

(भगवान् महावीर २५ वां निर्वाण शताब्दि के उपलक्ष में)

पूज्य श्री अमोलक ऋषिजी महाराज स्मारक ग्रन्थमाला पुष्प सत्या ८८



अन्तगडसूत्र मूलपाठ

(अनुवाद सहित)



सयोजक —

पंडित मुनिश्री कल्याण ऋषिजी महाराज

श्री गंगा
पुस्तकालय
मुंबई

प्रयमावृत्ति

१०००

मूल्य-चार रुपये मात्र

कोश : ६६००३३

विक्रम संवत्
२०३२
जुलाई
१९७५ ई

प्रकाशक:—

श्री अमोल जैन ज्ञानालय, धूलिया
(पश्चिम खानदेश)

सर्व अधिकार प्रकाशक के स्वाधीन

मुद्रक:—
श्री जैनोदय प्रिंटिंग प्रेस
चौमुखीपुल, रत्नछात्र

प्रस्तावना

परम तारक, देवाधिदेव, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, तीर्थंकर भगवन्तों ने जगज्जोवों के कल्याण के लिए जो उपदेश फरमाया है वह 'निर्यन्त्र प्रवचन' कहा जाता है। प्रश्न व्याकरण सूत्र में कहा गया है कि "सर्वजग जीव रक्खणदयहयाए भगवया पानयण कहिय" अर्थात् मंसार के सभी जीवों की रक्षा, दया और कल्याण के लिये भगवान् ने प्रवचन फरमाया है।

तीर्थंकर परमात्मा अर्थरूप से जो फरमाते हैं उसे ही चतुर्दश पूर्वधारी गणधर सूत्ररूप में गृथते हैं। अत्यं भासइ अर्हा मुत्त गयन्ति गणहरा निउणं।

तीर्थंङ्करो की यह वाणी सत्य है, अनुत्तर है, अनुपम है, सशुद्ध है, प्रतिपूर्ण है, नैयायिक है, शल्य को काटने वाली शिद्रि और मुक्ति का मार्ग बतलाने वाली, निर्वाण और निर्याण देने वाली है। यह अवितथ, असंदिग्ध और ध्रुव है।

इस वाणी का आशय लेने वाले सिद्ध होते हैं। बुद्ध होते हैं जन्म मरण से मुक्त होते हैं, निर्वाण को प्राप्त करते हैं और सभी दुर्गों का अन्त करते हैं।

द्वादशांगी रूप जिन वाणी में आठवां अंग 'अन्तगड्दशांग' है। इस अंग सूत्र में उन विशिष्ट पुरुषों महिलाओं और तुमारों का वर्णन किया गया है जिन्होंने अपने सपस्त क्रमों के आचरण को प्रवल पुरुषार्थ से द्धित भिन्न करके जन्म मरण रूप गंमार का अंत करके मोक्ष एवं निर्वाण प्राप्त किया है। इन महामगलमय आत्माओं का पुण्यस्मरण भी मंगलमय का कारण होता है अतएव पयुंषण पर्व के मांगलिक दिवसों में इस "अंतगड सूत्र" को पढ़ने मुनने की परिपाटी जैन समाज में सदियों से चली आ रही है।

समस्त स्थानकवासी जैन समाज में पयुंषण पर्व के दिनों में यह सूत्र बहुत ही श्रद्धा एवं आदर के साथ पढा और सुना जाता है। वस्तुन. इस सूत्र में वर्णित महापुरुषों, महासतियों और कुमारों का जीवन मुमुक्षु आत्माओं के लिये भव्य आदर्श रूप है।

जिस प्रकार इन आत्माओं ने ज्ञान-दर्शन और चारित्र की उत्कृष्ट साधना करके निर्वाण प्राप्त किया उसी प्रकार उनके पदचिन्हों पर चल कर प्रत्येक आत्मा निर्वाण प्राप्त कर सकती है।

जैन धर्म अहिंसा, संयम, तप, त्याग और तितिक्षा को महत्व देता है, धन, वैभव, राजपाट ऐश्वर्य को नहीं। जैन धर्म त्याग प्रधान धर्म है, भोग प्रघान नहीं। जैन धर्म के तीर्थङ्कर स्वय विशाल साम्राज्य को छोड़ कर जगत् के जीवों के कल्याण के लिये निर्ग्रन्थ बने। हजारों सम्राट् और महारानियाँ संसार के वैभव को टुकुराकर तीर्थङ्कर भगवान् के पवित्र चरणों की शरण में आईं।

कृष्ण वासुदेव और सम्राट् श्रेणिक को महारानियो ने तो तीर्थङ्कर प्ररूपित संयम मार्ग अंगीकार करके जो उत्कृष्ट तप त्याग की साधना की वह बहुत ही अनुपम और प्रेरणास्पद है।

महारानियों का विविध तप, गजसुकुमार की तितिक्षा, सुदर्शन श्रावक की दृढता इत्यादि सभी प्रसंग मुमुक्षु आत्माओं को सुन्दर प्रेरणा देने वाले है। जगत् के वैभव, सासारिक सुखोपभोग और स्नेही जनों के मोह ममतामयी संबंधों की अनित्यता, अनावश्यकता और अस्थिरता को समझकर इन महान् आत्माओं ने इनका परित्याग करके आत्म कल्याण किया।

आज के इस युग में जबकि भौतिक और सासारिक सुखों की लालसा और पिपासा अत्यधिक बढ रही है और जिसके कारण ससार में सर्वत्र अशान्ति संघर्ष और विद्वेष आदि निरन्तर बढते चले जा रहे हैं, ऐसे वातावरण में यह परम आवश्यक है कि सर्व सामान्य जनता को वास्तविक सत्यमार्ग बताया जाय, जिनेश्वर भगवन्तों का परम पावन उपदेश

मुनाया जाय । इस हितकारी और मंगलमय गास्त्रानुसारी धर्म के अनुसरण से ही जगत् का और मानव मात्र का कल्याण हो सकता है ।

इसी शुभ आशय से श्री अमोल जैन ज्ञानालय, धुलिया जैन धर्म के ग्रन्थों का प्रकाशन करके जनता में धार्मिक भावना को प्रसारित और प्रचारित करने का प्रयास कर रहा है । इस अन्तगड़ सूत्र का प्रकाशन भी इसी संदर्भ में किया जा रहा है ।

भगवान् महावीर के २५०० वें निर्वाण महोत्सव के उपलक्ष में उनकी ही वाणी का यह प्रकाशन उनके प्रति हमारी यह त्रिनम्र श्रद्धाजली है ।

श्री अमोल जैन ज्ञानालय को स्थापना वि सं १९९९ में हुई और तभी से यह संस्था जैन धर्म संवन्धी साहित्य का प्रकाशन करके अला मूल्य में वितरित कर रही है । इसके छोटे आकार किन्तु सर्वांग पूर्ण प्रकाशन का एक मुद्दा यह भी है कि पैदल विहार करने वाले संत-सतियों के लिये जितना भार कम रहे विहार में उतनी ही सहूलियत रहती है, ऐसे यह प्रकाशन इस मंथ्या का ६६ वाँ पुष्प है । अगले और पुष्प प्रेस में मुद्रणाधीन है ।

इस सस्या को मुख्य रूप से प. मुनि श्री कल्याण ऋषिजी म. सा. का शुभाशीर्वादि प्राप्त है जिससे संस्था को भव्य स्वल्प प्राप्त हुआ है । हम पं. मुनि श्री के अत्यन्त आभारी है ।

अन्त में, हमें विज्वास है कि यह प्रकाशन सबके लिये उपयोगी होगा । इसमें वर्णित तत्वों को अपना कर मुमुक्षु आत्मायें अपना कल्याण करें यही शुभ कामना ।

धुलिया

ता० १-६-१९७५

प्रकाशक—

श्री अमोल जैन ज्ञानालय, धुलिया

—: अमोल प्रकाशन :-

(१) श्री आचाराङ्ग सूत्र	५-००	(१८) महासती मदन रेखा	१-००	(३४) चन्द्रसेन लीलावती	२-५०
(२) श्री सूयगडाङ्ग सूत्र	५-००	(१९) रुक्मिणी	१-२५	(३५) जयसेन विजयसेन	२-००
(३) श्री अन्तगढ सूत्र	४-००	(२०) मल्लिजिन	१-५०	(३६) सायर तरङ्गिणी	२-००
(४) श्री आवश्यकसूत्र (मूल)	०-६०	(२१) अभयकुमार	०-७०	(३७) नवरत्न राशी-१	१-००
(५) शास्त्र-स्वाध्याय	०-५०	(२२) ज्ञाना राधना	०-३०	(३८) अमृत भजन मंजरी	०-५०
(६) गोसुधर्मा स्वामीने सुना-देव	२-००	(२३) अक्षय तृतीया	०-५०	(३९) अमृत कविता कुंज	०-५०
(७) गोसुधर्मा स्वामीने सुना-गुरु	२-००	(२४) प्रद्युम्नकुमार चरित्र	२ ५०	(४०) जिन गुण गितिका	१-००
(८) जीवन श्रेयस्कर पाठमाला	४-००	(२५) धर्मवीर जिनदास	२-५०	(४१) आलोचना	०-४०
(९) चिन्तन के चित्र	२-००	(२६) घन्ना शालिभद्र	२-५०	(४२) विद्वद विनोदिनी	१-५०
(१०) ध्यानकल्पतरु	२-००	(२७) पू श्री अमोलक ऋषिजी	२-६०	(४३) सुगेय गीतिका	०-७५
(११) पद्मिस बोल का थोकडा	०-५०	म. सा. जीवन चरित्र		(४४) भक्तामर-हिन्दी-अग्रेजी	१-००
(१२) लघुदण्डक का थोकडा	०-५०	(२८) अमोल जीवन ज्योति पू.श्री	२ ००	सहित	
(१३) श्री अमोल सूचि रत्नाकर	४ ००	अमोलक ऋषिजी मराठी चरित्र		(४५) तीर्थङ्कर महावीर	१०-००
(१४) आतुर प्रत्याख्यान	०-३०	(२९) भीमसेन हरिसेन	०-७५	(४६) ऋषभदेव चरित्र-प्रेस की प्रतिका में	
(१५) जैन तत्व प्रकाश	१५-००	(३०) हरिवंश	०-५०	(४७) सदा स्मरण	"
(१६) महिला जीवन मणिमाला	१२-००	(३१) अमृत चरित्रोद्धान	० ६०	(४८) धर्म तत्व संग्रह	"
(१६ सती पूरा सेट)		(३२) अमृत सुबोध शतक	०-५०	(४९) दृष्टान्त शतक	"
(१७) महासती श्रीमती	१-००	(३३) महाबल मलिया चरित्र	१-५०	(५०) नवरत्न राशि भाग-२	"

❧ नमः श्री वीतरागाय ❧

श्रीमद् अण्ठाकृद्दशाङ्गसूत्रम्

प्रथम-वर्ग



मूल—तेगं कालेणं तेगं समएणं चंपा नामं ययरी होत्था । पुएणभदे चेइए, वणसंडे । १॥

अर्थ—उन काल और उन समय में अर्थात् इस अवसर्पिणीकाल के चौथे आरे में, जिस समय श्रीनुवर्मा स्वामी इस भूतन पर विचरण कर रहे थे, चम्पा नामक नगरी थी । उसके ईशान कोण में पूर्णभद्र चैत्य था । उसके चारों ओर एक वनगः था ॥१॥

मूल—तेगं कालेणं तेगं समएणं अज्जसुहम्मे थेरे समोसरिए । परिसा शिगगया, जाव पडिगया ॥२॥

अर्थ—उन काल और उन समय में आर्यं नुवर्मा स्वामी पथारे । परिपद् निकली यावन् धर्मकथा श्रवण करके यापिन चमी गई ॥२॥

मूल—तेणं कालेणं तेणं समएणं अज्जसुहम्मस्स अंतेवासी अज्जलंबूणामं अणगारे जाव पज्जुवासइ,
एवं वयासी—जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं आइगरेणं जाव संपत्तेणं सत्तमस्स अंगस्स उवासग-
दसाणं अयमइ पएणत्ते; अट्टमस्स णं भंते ! अंगस्स अंतगडदसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं के अइ पएणत्ते ?

एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्टमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं अट्ट वग्गा पएणत्ता ॥३॥

अर्थ—उस काल और उस समय मे आर्य सुधर्मा स्वामी के शिष्य आर्य जम्बू स्वामी नामक अनगार यावत् पयु-
पासना करते हुए इस प्रकार बोले—‘भगवन् ! यदि धर्मतीर्थ की आदि करने वाले यावत् निर्वाणप्राप्त श्रमण भगवान् महा-
वीर ने सातवे अग उपासकदशा का उक्त अर्थ कहा है (जो मैंने आपके मुखारविन्द से श्रवण किया है) तो आठवे अग
अतकृद्दशा का श्रमण भगवान् महावीर, धर्मतीर्थ की आदि करने वाले यावत् निर्वाणप्राप्त, ने क्या अर्थ कहा है ?

(आर्य जंबू स्वामी का प्रश्न सुन कर श्रीसुधर्मा ने कहा)

हे जम्बू ! यावत् निर्वाण को प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने आठवे अग अतगडदसा (अन्तकृद्दशा) के आठ
वर्ग कहे है ॥३॥

मूल—जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्टमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं अट्ट वग्गा पएणत्ता,
पट्टमस्स णं भंते ! वग्गस्स अंतगडदसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं कति अज्जकयणा पएणत्ता ?

एवं खलु जंत्र ! समयेणं जात्र संपत्ते णं अड्डमस्म अंगस्स अंतगडदसाणं पढमस्स वग्गस्स दस अज्झम्—
यथा पएणत्ता । तंजहा—

गोयम-समुद्द-सागर-गंभीरे चैव होइ धिमिते य ।
अयले कं पिज्जे खलु, अक्खोभ-पसेणई विण्ह ॥४॥

अर्थ—(जन्तु स्वामी ने पुनः प्रश्न किया—) भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर यावत् निर्वाणप्राप्त ने आठवें अग अतगडदसा के आठ वर्ग कहे हे, तो भगवन् ! अतगडदसा के प्रथम वर्ग के श्रमण भगवान् महावीर यावत् निर्वाणप्राप्त ने कितने अव्ययन कहे हे ?

(श्रीगुधर्मा स्वामी बोले—) निश्चय ही जन्तु ! यावत् निर्वाणप्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने अंतगडदसा के प्रथम वर्ग के दस अव्ययन कहे हैं । वे इस प्रकार है—

(१) गौतम कुमार (२) समुद्द कुमार (३) सागर कुमार (४) गंभीर कुमार (५) धिमित कुमार (६) अचल कुमार
(७) कम्मिल्य कुमार (८) अक्षोभ कुमार (९) प्रसेन कुमार और (१०) विष्णु कुमार ॥४॥

मूल—उद्द णं भंते ! समयेणं जात्र संपत्ते णं अड्डमस्म अंगस्स अंतगडदसाणं पढमस्स वग्गस्स दस
अज्झयणा पएणत्ता, पढमस्म णं भंते ! अज्झयणस्स के अड्डे पएणत्ते ?

एवं खलु जंत्र ! तेणं कालेणं तेणं समएणं वारवईणामं नयरी होत्था-दुवात्तस जोयणायामा, नव—

जोयणवित्थिन्ना, थणवइमइनिम्माया, चामीकरपागारा, णाणामणिपंचवण्णकविसीसगपरिमंडिया, सुरम्मा, अलकापुरिसंकासा, पइइयपक्कीलिया, पच्चक्खं देवलोगभूया, पासादीया, दरिसण्णिज्जा, अभिरूवा, पडिरूवा ॥५॥

अर्थ—(जम्बू स्वामी ने प्रश्न किया—) भगवन् ! यदि यावत् निर्वाणप्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने आठवें अतगडदसा अग के प्रथम वर्ग के दस अध्ययन कहे है, तो भगवन् ! प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?

(सुधर्मा स्वामी ने उत्तर दिया—) जब्ब ! उस काल और उस समय मे द्वारवती (द्वारिका) नामक नगरी थी । वह बारह योजन लम्बी और नौ योजन चौड़ी थी । कुबेर देव ने सोच-विचार कर उसका निर्माण किया था । उसका परकोटा स्वर्ण का था और उस पर पाँच वर्ण की नाना मणियों से जड़े हुए कगूरे सुशोभित थे । वह अलकापुरी (कुबेर की नगरी) के समान अतिशय रमणीय थी । उसके निवासी सदैव प्रमुदित-हर्षित रहते थे । वह क्रीडा करने के स्थान जैसी मनोरम थी । साक्षात् देवलोक के समान जान पडती थी । दर्शको के चित्त को प्रसन्न करने वाली, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप अर्थात् अतीव सुन्दर थी ॥५॥

मूल—तीसे णं चारवईए णयरीए बहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए एत्थ ण रेवयए नामं पव्वए होत्था । वण्णञ्चो । ६॥

अर्थ—उस द्वारवती नगरी के बाहर उत्तरपूर्व दिशा अर्थात् ईशान कोण मे रैवतक नामक पर्वत था । उसका वर्णन समझ लेना चाहिए ॥६॥

मूल—तत्थ ग्रं रेवयए पव्वए नंदणवणे नामं उज्जाणे होत्था । वणयञ्चो !७॥

अर्थ—उस रैवतक पर्वत पर नन्दनवन नामक उद्यान था । उसका वर्णन समझ लेना चाहिए ॥७॥

मूल—सुरप्पिए नामं जक्खस्स जक्खायणे होत्था, पोरण्णे; से ग्रं एणेणं वणसंडेणं परिक्खित्ते, अमोगवणपयवे । पुढविसिलापट्टए ॥८॥

अर्थ—उस उद्यान में सुरप्रिय नामक यक्ष का यक्षायतन था । वह बहुत पुराना था । वह यक्षायतन एक वनखड्ग में बंटा था । उसके मध्य में अशोक का एक उत्तम वृक्ष था । उसके नीचे एक पृथ्वीगिलापट्ट था ॥८॥

मूल—तत्थ ग्रं वारवईणयरीए कएहे णामं वासुदेवे राया परिवसइ, महया रायवणयञ्चो ।९॥

अर्थ—द्वारवती नगरी में कृष्ण नामक वासुदेव राजा निवास करते थे । वह हिमवान् पर्वत के समान थे, इत्यादि नग्रा का वर्णन यहाँ ममज्ञ लेना चाहिए ॥९॥

मूल—से ग्रं तत्थ समुहविजयपामोक्खाणं दसएहं दसाराणं, वलदेवपामोक्खाणं पंचएहं महावीराणं पञ्जुणपामोक्खाणं अद्भुट्ठाणं कुमारकोडोणं, संवपामोक्खाणं सट्ठीए दुहं तसाहस्सीणं, महासेनपामोक्खाणं अण्णण्णए वलवग्गसाहस्सीणं, वीरसेणपामोक्खाणं एगवीसाए वीरसाहस्सीणं, उग्गसेणपामोक्खाणं सोलसणं रायसाहस्सीणं, रुप्पियिपामोक्खाणं सोलसएहं देविसाहस्सीणं, अण्णसेणपामोक्खाणं अण्णेगाणं गणिया—

साहस्सीणं, अरण्येसि च बहूणं ईसर जाव सत्थवाहाणं वारवईए नयरीए अद्धभरहस्स य समत्थस्स आहैवच्चं जात्र चिहरइ ॥१०॥

अर्थ—वहाँ (१) समुद्रविजय (२) अक्षोभ (३) स्तिमित (४) सागर (५) हिमवन्त (६) अचल (७) धरण (८) पूरण (९) अभिचन्द्र और (१०) वासुदेव, यह दस दसार थे। बलदेव वगैरह पाँच महावीर थे। प्रद्युम्न वगैरह साढे तीन करोड़ कुमार थे। शाम्ब वगैरह साठ हजार दुर्दान्त थे। महासेन आदि छप्पन हजार बलवान् पुरुष थे। वीरसेन आदि इक्कीस हजार वीर थे। उग्रसेन आदि सोलह हजार मुकुटबद्ध राजा थे। रुक्मिणी आदि सोलह हजार रानियाँ थी। अंगसेना आदि कई हजार गणिकाएँ थी। इनके सिवाय और भी बहुत से सामान्य राजा, युवराज, सार्थवाह आदि थे। कृष्ण वासुदेव इन सब का द्वारवती नगरी का तथा सम्पूर्ण आधे भरत क्षेत्र का आधिपत्य कर रहे थे ॥१०॥

मूल—तत्थ णं वारवईए नयरीए अंधगवण्ही णामं राया परिवसइ, मड्या हिमवंत. वण्णओ ॥११।

अर्थ—उस द्वारिका नगरी में अन्धकवृष्णि नामक राजा निवास करते थे। वह हिमवान् पर्वत के समान महान् थे, इत्यादि राजा का वर्णन समझ लेना चाहिए ॥११॥

मूल—तस्स णं अंधगवण्हिहस्स रण्णो धारिणी णामं देवी होत्था, वण्णओ ॥१२॥

अर्थ—उन अंधकवृष्णि राजा की धारिणी नामक नामक रानी थी। यहाँ रानी का वर्णन समझ लेना चाहिए ॥१२॥

मूल—तए ण सा धारिणी देवी अरण्यया कयाइ तंसि तारिसगंसि सयण्डिजंसि एवं जाव महब्बले-

सुमिण्डं सणकह्या लम्म, बालत्तणं, कलाओ य । लोब्बण पण्णिगहणं, कंता पासाय भोगा य ॥१॥ णवरं
गोयमकुमारे णामेण, अट्टणं रायत्रकन्नाणं एगदिन्नसेणं पाणि गेपहंवेत्ति, अट्टट्टओ दाओ ॥१३॥

अर्थ—धारिणी देवी ने किसी समय पुण्यवन्त के शयन करने योग्य शय्या पर सोते समय सिंह का स्वप्न देखा । इत्यादि कथन भगवतीमूत्र में कथित महावल कुमार के समान समझना चाहिए । यथा—स्वप्न का देखना, स्वप्नपाठकों के ममक्ष स्वप्न का कथन, उसका फल, कुमार का जन्म, बाल्यावस्था, कलाओ की शिक्षा, यौवन की प्राप्ति, पाणिग्रहण, पत्नियाँ, उनके लिए प्रसादों का निर्माण तथा मनुष्य सम्बन्धी भोगों को भोगना । विशेषता केवल यही है कि यहाँ कुमार का नाम गौतम रखवा गया । एक ही दिन में आठ श्रेष्ठ राजकुमारियों के साथ पाणिग्रहण कराया गया । आठ-आठ दात दहेज में दी ॥१३॥

मूल—तेयं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिद्धनेमी आइगरे नाव विहरइ ॥१४॥

अर्थ—उस काल और उस समय धर्मतीर्थ की आदि करने वाले यावत् अरिहन्त अरिष्टनेमि, अनुक्रम से विचरण करने हुए यावत् द्वारिका नगरी के बाहर नन्दनवन उद्यान में तप-संयम से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे ॥१४॥

मूल—चउब्बिहा देवा आगया, कएहे वि णिगते । १५।

अर्थ—चारों पहार के देवों का आगमन हुआ, कृष्ण वामुदेव भी धर्मदेशना श्रवण करने के लिए नगरी से निकले ॥१५॥

मूल—तए णं तस्स गोतमस्स कुमारस्स जहा मेहे तथा शिग्गए, धम्मं सोच्चा, णवरं देवाणुप्पिया ! अम्मपियरे आपुच्छामि, देवाणुप्पियाणं अंतिए पव्वयामि; एवं जहा मेहे जाव अणगारे जाए इरियासमिए जाव इणमेव निग्गंथं पावयणं पुंओ काउं विहरइ ॥१६॥

अर्थ—तव गौतम कुमार भी, ज्ञाताधर्मकथा सूत्र से कथित मेघकुमार के समान आये । धर्मकथा सुनी । नौराग्य उत्पन्न हुआ । भगवान् से निवेदन किया—माता—पिता से पूछ कर देवानुप्रिय के निकट प्रव्रज्या अगीकार करूंगा । यावत् वह मेघकुमार के समान अनगार बन गये और ईर्यासमिति आदि से युक्त हुए यावत् निर्ग्रन्थ प्रवचन को ही समक्ष करके विचरने लगे ॥१६॥

मूल—तए णं से गोयमे अणगारे अन्नया कयाई अरहओ अरिद्धनेमिस्स तहारूवाणं थेराण अंतिए सामाइयमाइयाई एक्कारस अंगाइ अहिज्जइ । अहिज्जित्ता बहूहिं चउत्थ जाव अण्णण भायेमाणे विहरइ ॥१७॥

अर्थ—तत्पश्चात् उन गौतम अनगार ने किसी समय भगवान् अरिष्टनेमि के शिष्य तथारूप स्थविरों के पास से सामायिक आदि से लेकर ग्यारह अंगो तक अध्ययन किया । अध्ययन करके बहुत उपवास वेला आदि तपस्या से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे ॥१७॥

मूल—तए णं अरहा अरिद्धनेमी अन्नया कयाई वारवईनगरीओ नंदणवणाओ पडिणक्खमइ, पडि— शिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ ॥१८॥

अर्थ—तदनन्तर अहंत् अरिष्टनेमि किसी समय द्वारिका नगरी से और नन्दनवन नामक उद्यान से बाहर पधारे और जनपदो से विचरण करने लगे ॥१८॥

मूल—तते एं से गोयमे अणगारे अन्नया क्याइ जेणेव अरहा अरिहनेमी तेणेव उवागच्छइ, उवा-
गच्छिता अरहं अरिहनेमिं तिवसुतो आयाहियपयाहिणं करेइ, करिचा वंदइ नमंसइ, वंदिचा नमंसिचा एवं
वयामी इच्छामि णं भंते ! तुभेहिं अब्भणएणएणए समाणे मासियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जिचाणं विहरिचए ।
एव जहा वदओ तथा वारस भिक्खुपडिमाओ फासेइ, फासिचा गुणयणं पि तवोकम्मं तहेव फासेति णिरव-
सेमं, एवं जहा खंदओ तथा चित्तेमि, तथा आपुच्छति, तथा अरेहिं कडाहिएहिं सद्धिं सेतुंजं दुरूहइ, मासियाए
संलेहणाए वारस वरिसाइं परियाओ जाव सिद्धे ॥१६॥

अर्थ—तव गीतम अचगार अच्यदा किसी समय जहाँ अर्हन्त अरिष्टनेमि थे, वहाँ पहुँचे । पहुँच कर अर्हन्त अरिष्ट-
नेमि हो तीन वार हाथ जोड़ कर, आदक्षिण प्रदक्षिणा करके बोले—भगवन् ! आपकी अनुमति प्राप्त करके मैं एक मास की
भिन्नुप्रतिमा अंगीकार करके विचरना चाहता हूँ । यो भगवती सूत्र में कथित स्कंधकजी के अनुसार वारह ही भिन्नु-
प्रतिमाओ हो स्वर्गना की । गुणरत्नस्रवत्सर नामक तप की भी स्पर्शना की । सर्व कथन स्कंधकजी के अधिकार के
अनुसार जानना चाहिए । स्कंधक के अनुसार ही भगवान् की आज्ञा लेकर संथारे में सहायक स्वयिरोँ के साथ शत्रुंजय
पर्वत पर भ्रान्द होकर, एक मास की सलेखना करके, वारह वर्ष तक संयय पालकर यावत् सिद्ध हुए ॥१६॥

मूल—एवं खलु समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्ते णं अट्टमस्स अंतगडदसाणं पढमस्स
वग्गस्स पढमस्स अब्भयणस्स अयमट्ठे पण्णते ॥२०॥

अर्थ—(बुधार्मा स्वामी जम्हू स्वामी से कहते हैं—) इस प्रकार है जम्हू ! श्रमण भगवान् महावीर यावत् निर्वाण

प्राप्त ने आठवें अन्तगडदसा अंग के प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ कहा है ॥२०॥

प्रथम अध्याय समाप्त

मूल—एवं जहां गोयमो तहां सेसा वएही पिया धारिणी माता, समुह्ं सागरे गंभीरे थिमिए, अयले, कंपिन्ले, अक्खोभे, पसेणइ, विणहुए, एए एगगमा । पढमो वग्गो, दस अज्झयणा पण्णत्ता ।

पढमो वग्गो समतो

अर्थ—जिस प्रकार गौतम कुमार का अधिकार कहा, उसी प्रकार शेष नौ कुमारों के नौ अध्याय कहने चाहिए । नौ ही कुमारों के अंधकवृष्णि पिता तथा धारिणी माता कहना । दूसरे अध्याय में समुद्र का, तीसरे में सागर कुमार का, चौथे में गभीर कुमार का, पाँचवें में स्थिति कुमार का, छठे में अचल कुमार का, सातवें में काम्पिल्य कुमार का, आठवें में अक्षोभ कुमार का, नौवें में प्रसेनजित कुमार का और दसवें अध्ययन में विष्णु कुमार का वर्णन किया है । इन सब का एक-सा ही गम-पाठ है । यह सब कुमार बारह-बारह वर्ष तक संयम पाल कर, शत्रुं जय पर्वत पर एक मास की संलेखता करके सिद्ध हुए ॥१॥

प्रथम वर्ग समाप्त

द्वितीय वर्ग



मूल—ब्रह्म० दोचस्स वग्गस्स उक्खेवओ । एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं अड्ड अज्झ-
यणा पएणत्ता, तं जहा—

अम्बोभ सागरे खलु, समुद्द हिमवंत अचल णामे य ।
धरणे य पूरणे वि य, अभिचंदे चेव अट्ठमए ॥ १ ॥

अर्थ—दूसरे वर्ग का उत्सेप पूर्ववत् जानना चाहिए । जंबू स्वामी ने प्रश्न किया—भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर ने अंतगड्ढमा के प्रथम वर्ग का यह अर्थ कहा है तो दूसरे वर्ग का क्या अर्थ कहा है ? श्रीमुवर्मा स्वामी बोले—हे जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर यावत् मुक्ति प्राप्त ने अत्तगड्ढसा अंग के द्वितीय वर्ग के आठ अट्ठयन कहे हैं । वे इस प्रकार हैं—(१) अक्षोभ (२) मागर (३) समुद्द (४) हिमवन्त् (५) अचल (६) धरण (७) पूरण (८) अभिचन्द्र ॥१॥

मूल—तेणं कालेणं तेणं समएणं वारवईए णयरीए वएही पिया धारिणी माया । जहा पढमो वग्गो

तथा सर्वत्र श्रद्धाभरणं गुणरयणं तवोकर्मं सोलस वासाहं परियात्रो, सेतुं जे मासियाए संलेहणाए जाव सिद्धा ।
एवं खलु नंबू ! समणेणं जात्र संपत्ते णं अट्टमस्स अंगस्स दोब्बस्स वग्गस्स अयमट्ठे पणत्ते ॥२॥

इति बिउवर्गो ।

अर्थ—उस काल और उस समय में द्वारवती नगरी में अन्धकवृष्णि नामक राजा थे । वही इन आठो कुमारो के पिता थे । धारिणी माता थी । जैसे प्रथम वर्ग मे गौतम कुमार का वृत्तान्त कहा वैसा ही इन सब का कहना चाहिए । इन्होंने भी गुणरत्न संवत्सर तप किया, सोलह वर्षों तक साधुपर्याय का पावन किया । शत्रुञ्जय पर्वत पर एक महीने की संलेखना करके सिद्धि प्राप्त की ।

श्रमण भगवान् महावीर ने आठवे अग के द्वितीय वर्ग का यह अर्थ कहा है ।

दूसरा वर्ग समाप्त

तृतीय वर्ग

मूल — ३३० तच्चम उक्तेष्वश्री । एवं खलु जन्तु ! अडुमस्स अंगस्स तच्चस्स वग्गस्स तेरस्स अल्लस-
यणा पग्गणा, तंजहा अणीयमसेण, अणंतसेण, अजियसेण, अण्हियरिऊ, देवसेणे, सत्तुसेण, सारणे, गए,
सुमुंहे, दुस्सुंहे, क्खण, दासए, अणादिड्डी । १॥

अर्थ—तीनरे वर्ग का उत्तम नमज्ञ लेना चाहिए । यदि श्रमण भगवान् महावीर ने दूसरे वर्ग का यह अर्थ कहा है तो तीसरे वर्ग का क्या अर्थ कहा है ? हे जन्तु ! श्रमण भगवान् महावीर ने आठवें अंग के तीसरे वर्ग के तेरह अव्ययन पढ़े हैं । यथा—(१) अणीयसनेन कुमार का (२) अनत्तसेन कुमार का (३) अजितसेन कुमार का (४) अनिहतरिपु कुमार का (५) अण्णेण कुमार का (६) जत्तुनेन कुमार का (७) सारण कुमार का (८) गजमुकुमाल कुमार का (९) सुमुख का (१०) सुत्तुनेन का (११) लूक कुमार का (१२) दासक कुमार का (१३) अनादृष्टि कुमार का ॥१॥

मूल—३३१ एवं भंते ! समणेणं जाव संपत्ते णं अडुमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं तच्चस्स वग्गस्स तेरस्स अल्लसयणा पग्गणा, पढमस्स णं भंते ! अल्लसयणस्स अंतगडदसाणं के अट्ठे पएणत्ते ? ॥२॥

अर्थ—जन्तु नामी ने प्रश्न किया—भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर यावत् निर्वाणप्राप्त ने आठवें अंग अल्लसयणा के तीसरे वर्ग के तेरह अव्ययन पढ़े हैं तो भगवन् ! प्रथम अव्ययन का क्या अर्थ कहा है ? ॥२॥

३ मूल—एवं खलु नंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं भदिलपुरे णामं णयरे होत्था, वएणओ ॥३॥

अर्थ—सुधर्मा स्वामी ने उत्तर दिया—हे जम्बू ! उस काल और उस समय मे भदिलपुर नामक नगर था । यहाँ नगर का वर्णन कहना चाहिए ॥३॥

मूल—तस्स णं भदिलपुरस्स णयरस्स बहिया उत्तरपुगच्छिमे दिसिभाए सिरिचणे णामं उज्ज्जणो होत्था । वएणओ ॥४ ।

अर्थ—भदिलपुर नगर के बाहर उत्तरपूर्व दिग्भाग मे अर्थात् ईशान कोण मे श्रीवन नामक उद्यान था । यहाँ उद्यान का वर्णन कहना चाहिए ॥४॥

मूल—जियसत्तु णामं राया होत्था ॥५॥

अर्थ—उस नगर के राजा का नाम जितयन्तु था ॥५॥

मूल—तत्थ णं भदिलपुरे नयरे नागनामं गाहानई परिवसइ. अहुं जाव अपरिभूए ॥६॥

अर्थ—भदिलपुर नगर मे नाग नामक गाथापति निवास करता था । वह ऋद्धि सम्पन्न यावत् किसी से पराभूत होने वाला नहीं था ॥६॥

मूल—तस्स णं नागस्स गाहानइस्स सुलसा नामं भारिया होत्था, सुकुमाला जाव सुरूवा ॥७ ।

अर्थ—उस नाग नामक गाथापति की पत्नी का नाम सुलसा था । वह सुकुमार शरीर वाली यावत् सुरूपवती थी ॥७॥

शूल—तस्मै च नागस्त गात्रावइस्म पुत्त सुलसाए भारियाए अत्तए अणीयससेणणामं कुमारे होत्था,
मुक्कुभाले जात्र मुल्ले, पंचश्राइपरिक्खत्ते; तंजहा-खीरथाई, जहा दढपइन्ने, जात्र गिरिकंदरमल्लीणेव चंपगवर-
पायत्ते मुहं मुद्रेणं परिवट्टइ ।८।।

अर्थ—नाग गाथापति का पुत्र और मुलसा का आत्मज अणीयससेन नामक कुमार था । वह सुकुमार यावत्
मुल्य था । पांच श्रायो से घिरा रहता था, यथा-(१) दूध पिलाने वाली धाय (२) स्नान कराने वाली धाय (३) शृंगार
करने वाली धाय (४) गोद में लेने वाली धाय और (५) खेल खिलाने वाली धाय । शेष वर्णन औपपातिक सूत्र में कथित
इन्द्रप्रतिज्ञ कुमार के समान जानना चाहिए, यावत् पर्वत की कंदरा में जैसे चम्पक वृक्ष निर्वाध रूप से बढ़ता है, उसी
प्रकार अणीयससेन कुमार मुल्लपूर्वक वृद्धि को प्राप्त होने लगा ।८।।

मूल--तए णं तं अणीयससेणकुमारं साइरेगअट्टवासजायं जणित्ता अम्मपियरो कलायरियं जाव
भोगमसत्थे जाए यावि होत्था ॥९॥

अर्थ—तत्र अणीयससेन कुमार को आठ वर्ण से कुछ अधिक उम्र का हुआ जान कर माता-पिता ने कलाचार्य को
गोप दिया । यावत् वह भोग भोगने में समर्थ हो गया ।९।।

मूल—तए णं तं अणीयससेणकुमारं उम्भुवक्कवालभाव जणित्ता अम्मपियरो सरिसयाणं जाव
वत्तीणाए इत्तवक्कएणणाए एगदिवसेणं पाणि गेएहाविति ॥१०॥

अर्थ—तत्र अणीयससेन कुमार के माता-पिता कुमार को शोचन वय में प्राप्त हुआ जान कर समान, समान वय
वर्तीणाए इत्तवक्कएणणाए एगदिवसेणं पाणि गेएहाविति ॥१०॥

मूल—तए खं से नागे गाहावई अणीयससेणस्स कुमारस्स इमं एयारूवं पीइदारुं दलयइ, तंजहा-
वत्तीमं दिरण्ण-कोडोओ जहा महब्बलस्स जाव उधिंय पासायवरगए कुट्टुमारोहिं सुइं गमत्थएहिं भोगभोगाहं
सुं जसाणे विहरइ ॥११॥

अर्थ—तव नाग गाथापति ने अणीयससेन कुमार को इस प्रकार प्रीतिदान दिया—बत्तीस करोड हिरण्य आदि ।
जैसे भगवतीसूत्र में महाबल कुमार के दायजे का वर्णन है, उसी प्रकार यहाँ समझना चाहिए अर्थात् बत्तीस-बत्तीस नग
एक सौ अट्ठानवे वस्तुओं के दिये । यावत् अणीयससेन कुमार अटारी पर रह कर बजते हुए मृदंग आदि के साथ मनुष्य-
सम्बन्धी कामभोग भोगने लगा ॥११॥

मूल—तेणं कालेण तेण समएणं अरहा अरिद्धयेमी जाव समोसडे, सिरिवणे उज्जाणे अहा जाव
विहरइ । १२॥

अर्थ—उस काल और उस समय में अर्हन्त अरिष्टनेमि यावत् पधारे और श्रीवन नामक उद्यान में उचित स्थान
की याचना करके ठहर गये ॥१२॥

मूल—परिसा खिग्गया ॥१३॥

अर्थ—भगवान् की धर्मदेशना श्रवण करने और उपासना करने के लिए परिषद् निकली ॥१३॥

मूल—तए खं तस्स अणीयससेणस्स कुमारस्स महया जणसदं जहा गोयसे तथा, नवरं सामाइय-
माइयाइं चौदस पुब्बाइं अहिज्जइ, वीसं वीसाइं परियाओ, सेस तहेव जाव सेत्तुं ज्जे पव्वए मासियाए
संलेहणाए जाव सिद्धे । १४ ।

अर्थ—तब अणीयमेव कुमार भी बहुत लोगों का कोलाहल सुन कर गीतम कुमार की तरह भगवान् अरिष्टनेमि के दर्शनार्थ आया। दीक्षा अणिकार की। विज्ञेयता यह है कि अणीयसेन मुनि ने सामायिक से लगा कर चौदह पूर्वों का ज्ञान प्राप्त किया। वीस वर्ष तक सयम का पालन किया। शेष वर्णन वीसा ही जानना, यावत् शत्रुञ्जय पर्वत पर एक मास का गयारा करके यावत् मिद्धि प्राप्त की ॥१४॥

मूल — एवं खलु जंत्रु । समरणेणं जात्र संपत्ते रणं अट्टमस्स अंतगड्दसाणं तच्चस्स वग्गस्स पट्टमस्स अट्ठमयणंस्स अयमट्ठे पएणत्ते । १५॥

अर्थ—श्रीमुधर्मा स्वामी तीसरे वर्ग का उपसहार करते हैं—हे जम्हू ! श्रमण यावत् निर्वाणप्राप्त भगवान् महावीर ने प्राप्त अनगड्दना जग के तीसरे वर्ग के प्रथम अव्ययन का यह अर्थ कहा है ॥१५॥

मूल — एवं जहा अणीयससेणे एवं सेमा वि, अणंतसेणो, अजियसेणो, अण्हयरिळ, देवसेणे, मत्तुसेण छ अट्ठमयण। एत्तकगमा । वत्तीसाओ दाओ, वीसं वासाइं परियाओ, चोइम पुव्वाइं अहिज्जंति, सेत्तुंने जात्र मिद्धा ॥१६॥

छट्ठमज्झयणं समत्तं ।

अर्थ—जिन प्रकार अणीयसेन का अधिकार कहा, उसी प्रकार शेष अनन्तसेन, अजितसेन, अनिहतरिपु, देवसेन, और नानुमेव दुमारो का भी अधिकार कहना चाहिए। सब के पिता नाग गाथाफति, माता सुलसा, वत्तीस-वत्तीस स्त्रियाँ, वत्तीस-वत्तीस नगों का प्रीतिदान, वीस वर्ष की दीक्षा, चौदह पूर्वों का अव्ययन यावत् शत्रुञ्जय पर्वत पर सिद्धि; यह सब वर्णन उन पांचों में भी नमजना। इन प्रकार छठा अव्ययन समाप्त हुआ ॥१६॥

मूल—जइ णं भंते ! उक्खेवओ सत्तमस्स । तेणं कालेणं तेणं समएणं वारवईए णयरीए जहा पढमे, एवरं वसुदेवे राया, धारिणी देवी, सीहो सुमिणं, सारणे कुमारे, पण्णामओ दाओ, चौहस पुव्वा, बीस वासा परियाओ, सेमं जहा गीयमस्स जाव सेचुं जे सिद्धे ॥१॥

सत्तमउक्खयणं समत्तं ।

अर्थ—यदि श्रमण भगवान् महावीर ने छोटे अध्ययन का यह अर्थ कहा है तो सातवें का क्या अर्थ कहा है ? इस प्रकार सातवें अध्ययन का उत्क्षेप कहना चाहिए ।

सुधर्मा स्वामी ने उत्तर में कहा—उस काल और उस समय द्वारिका नगरी में इत्यादि पूर्ववत् जानना । विशेषता यह है कि—वसुदेव राजा पित्त', धारिणी, देवी माता, सिंह स्वप्न देखा । सरण नामक कुमार हुआ । पाँच सौ कन्याओं के साथ एक दिन में पाणिग्रहण कराया । पाँच-पाँच सौ नगों का दहेज दिया गया । शेष सब अधिकार गौतम कुमार के समान समझना । यावत् शत्रुञ्जय पर्वत पर एक मास की सलेखना करके सिद्धि प्राप्त की ॥१॥

सातवाँ अध्याय समाप्त

मूल—जइ उक्खेवो अट्टमस्स । एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं वारवईए णयरीए जहा पढमो जाव अरहा अरिद्धनेमी समोसुढे ॥१॥

अर्थ—जम्बू स्वामी ने जब आठवें अध्ययन के अर्थ के विषय में प्रश्न किया तो श्रीसुधर्मा स्वामी बोले—हे जम्बू ! उस काल और उस समय में द्वारिका नामक नगरी थी । उसका कथन प्रथम अध्ययन के अनुसार जानना चाहिए; यावत् अरिहन्त अरिद्धनेमि पधारे ॥१॥

मूल—तेणं कालेणं तेणं ममएणं अरहणो अरिद्धन्तेमिस्स अंतेवासी छ अणगारा भायरा सहोदरा
 दोन्था-गरिमय, मरित्तया सरिव्वया, नीलुपल-अवल-गुलिय अयसि कुमुमपपासा, सिरिवच्छंक्रियवच्छा,
 कुमुमकु डलभदालया, नलकुट्टवरममाणा ॥२॥

अर्थ—उन काल और उस समय अरिहत्त अरिष्टनेमि के छद्म अन्तेवासी (विष्य) साधु सहोदर भाई थे । छहों
 एक गरीब, गमान त्वचा वाले, ममान उम्र के (दिखाई देने वाले) नील कमल, भंस के सीत, नील की गुटिका एवं
 अन्नमी के फूल जैसे प्रकाशमान शरीर के धारक, शीवत्त स्वस्तिक से अंकित वक्ष स्थल वाले, फूलों के समान मुकुमार
 तथा सुगन्ध के समान सुगन्धने सुन्दर बालो वाले ननकूवर के समान सुन्दर थे ॥२॥

मूल—तए णं ते छ अणगारा जं चेव दिवमं सुं डा भविता अगाराओ अणगारियं पव्वइया ते
 नेव दिवमं अरहं अरिद्धन्तेमि वंदति ऋपंमंति, वदित्ता नमसिन्निता एवं वयासी-इच्छामो णं भंते ! तुवभेहि
 अट्ठमणुदाया ममाणा जावज्जीवाए छड्डं छड्डे ण अणिकिञ्चित्तेणं तवोक्कमेण संजसेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा
 विट्ठरिचाण ।

‘अणगहं देवणुपिया ! मा पडिव्वं करेइ’ ॥३॥

‘मा’—नगन्तान जिन दिन उन छद्म सहोदर भाइयों ने दीक्षा अंगीकार की और अनगार-श्वस्था धारण की
 उन्हीं दिन उन्होंने अरिहत्त अरिष्टनेमि भगवान् को बन्दना नमस्कार करके इस प्रकार निवेदन किया—‘भगवन् ! तुमारी
 कृपा मुझ पर है कि आत्मी जाना प्राप्त हो जाय तो जीवन पर्यन्त निरन्तर कैले-वैले की तपस्या करते हुए और संयम
 एवं धर्म से आत्मा को भाँजित करने हुए विनरें ।

भगवान् ने फर्माया—'जिस प्रकार तुम्हे सुख उपजे, वैसा ही करो। उसमें विलम्ब मत करो ॥३॥

मूल — तए णं ते छ अणगारा अरहया अरिडुनेमिणा अब्भणुन्नाया समाणा जावजीवाए छहं छट्ठेणं जाव विहरंति ४॥

अर्थ - तत्पश्चात् वह छहों अनगार अर्हत् अरिष्ट नेमि की आज्ञा पाकर जीवन-पर्यन्त के लिए बेले-बेले की तपस्या करने लगे ॥४॥

मूल—तए णं ते छ अणगारा अणया कयाइ छट्ठक्खमणपारणगंसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करंति, जहा गोयमसामी जाव इच्छामो णं भंते ! छट्ठक्खमणस्स पाण्णाए तुब्भेहि अब्भणुणाया समाणा तिहिं संघाडएहिं वारवईए नगरीए जाव अडिचाए । अहासुहं ॥५॥

अर्थ—तदनन्तर उन छह अनारों ने बेले का पारणा दिन आने पर प्रथम प्रहर में स्वाध्याय किया, दूसरे प्रहर में ध्यान किया, और तीसरे में सुखवखिका पात्रादि की प्रतिलेखना करके, जिस प्रकार श्रमण भगवान् महावीर की आज्ञा लेकर गौतम स्वामी के गोचरी के लिए जाने का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार अरिहन्त अरिष्ट नेमि की आज्ञा लेते हुए कहा—भगवन् ! दो-दो साधुओं का एक-एक संघाड़ो करके-छह साधुओं के तीन संघाड़े करके, आपकी आज्ञा हो तो द्वारिका नगरी में भिक्षा के लिए अटन करना चाहते हैं। तब भगवान् ने फर्माया—जिस प्रकार सुख उपजे ॥५॥

मूल—तए णं छ अणगारा अरहया अरिडुनेमिणा अब्भणुणाया समाणा अरहं अरिडुनेमिं वंदंति, नभंसंति, अरहओ अरिडुणेमिस्स अंतियाओ सहसंबवणाओ पडिणिकखमंति । पडिणिकखमिचा तिहिं संघाडएहिं अतुरियं जाव अडंति ॥६॥

अर्थ - तलङ्घान् छट्टो अनगारों ने अहंत् अरिष्टनेमि की अनुमति पाकर, अहंत् अरिष्टनेमि को वन्दना की, नमस्कार किया और फिर अहंत् अरिष्टनेमि के पास से, सहवास्रवन उद्यान से बाहर निकले। बाहर निकल कर तीन संनाडे करके, त्वरारहित एव नमाविक के साथ द्वारिका नगरी में भिक्षा के लिए भ्रमण करने लगे ॥६॥

मूल—तन्थ यं एगे संघाडए वारवईए नगरीए उच्चर्नाचमज्झमाईं कुलाईं घरसमुदाणस्स भिक्षायारियाए अडमारो २ वसुदेवस्स रणयो देवईए देवीए गिहं अणुपविट्ठे ॥७॥

अर्थ - तदनन्तर उन तीन संघाडों में से एक संघाडा द्वारिका नगरी के सघन, निर्धन एवं मध्यम कुलो में क्रमवा भिक्षा के लिए भ्रमण करता-करता वसुदेव राजा की देवकी रानी के घर में प्रविष्ट हुआ ॥७॥

मूल—तए यं सा देवई देवी ते अणगारे एज्जमाणे पासित्ता हट्ठ-तुट्ठहियाया भासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता मत्तडुपयाईं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता तिवसुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता जेणव भत्तधरे तेणव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहकेसराण मोयगाणं थाल भरेइ, भंत्ता ते प्रणगारे पडिलाभेइ, पडिलाभित्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता पडिविसज्जेइ ॥८॥

अर्थ - देवकी महारानी ने उन साधुओं को आता देखा तो उसके हृदय में हर्ष और सन्तोष हुआ। वह आसन से उठी और नात-आठ कदम नामने गई। फिर तीन बार प्रदक्षिणा की, वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार करने भोजनगृह में गई। फिर सिहकेसर मोदकों का थाल भरा और मुनियों को दान दिया-बहराया। बहराने के बाद फिर वन्दन-नमस्कार करके उन्हें विदा किया ॥८॥

मूल—तयागंतरं च यं दोच्चे संघाडए वारवईए नगरीए उच्च जाव पडिविसज्जेइ ॥९॥

अर्थ—उन साधुओं के जाने के पश्चात् दूसरा राजाड़ा भी द्वारिका नगरी के उच्च, नीच एवं मध्यम कुलों में शिक्षा के लिए भ्रमण करता हुआ देवकी रानी के घर आ पहुँचा। देवकी को आश्चर्य हुआ कि यह वही साधु है या दूसरे ? उसने उन्हें पूर्वोक्त प्रकार से वन्दना-नमस्कार कर सिंहकेसर मोदक बहराये और विदा किया ॥९॥

मूल—तयाणंतरं च णं तच्चे संघाडे वारवहनगरीए उच्चनीय जाव पडिलाभेत्ता एवं वयामी-किण्हं देवाणुण्णिया ! कएहवासुदेवस्स इमीसे वारवईए नयरीए वारसजोयणआयामाए नवजोयण-वित्थिन्नाए पच्चवखं देवलोगभूयाए समणा निगंथा उच्चणीयमज्झिम्माइं कुलाइं वरसमुदाणस्स भिक्खाय-रियाए अडमाणा भ्रपणं णो लभंति ? जन्नं ताइं वेव कुलाइं भ्रपणाणए भुज्जो भुज्जो अणुप्पविसंति ? ॥१०॥

अर्थ—तत्पश्चात् तीसरा संघाडा भी द्वारिका नगरी के सघन, निर्धन एवं मध्यम कुलों में भ्रमण करता हुआ देवकी रानी के घर पहुँचा। उसे भी वन्दना-नमस्कार करके पहले की भाँति मोदक बहराये। बहराने के बाद देवकी ने कहा—देवानुप्रियो ! कृष्ण वासुदेव की इस द्वारिका नगरी में, जो बारह योजन लम्बी, नौ योजन चौड़ी और साक्षात् देवलोक के समान है, भ्रमण निग्रन्थों को सघन, निर्धन एवं मध्यम घरों में अनुक्रम से भिक्षार्थ भ्रमण करते हुए क्या भोजन-पानी नहीं मिलता है ? जिससे उन्हें बार-बार एक ही घर में प्रवेश करना पड़ता है ? ॥१०॥

मूल—तए णं ते अणगारा देवइं देविं एवं वयासी-णो खलु देवाणुण्णिए ! कएहस्स वासुदेवस्स इमीने वारवईए णयरीए जाव देवलोगभूयाए समणा निगंथा उच्चणीय जाव अडमाणा भ्रपणं नो लभति, नो वेव णं ताइं वेव कुलाइं दोच्चं पि तच्चं पि भ्रपणाणए अणुप्पविसंति ॥११॥

अर्थ—तब उन अनगारों ने देवकी देवी से कहा—देवानुप्रिये ! कृष्ण वासुदेव की इस द्वारिका नगरी में, जो यावत्

प्रत्यक्ष देवलोक के नमान हे, निर्ग्रन्थ श्रमणों की सधन, निर्वन एव मध्यम कुलों में श्रमण करते भोजन-पानी नही मिलता, ऐसी बात नही है। यह बात भी नही है कि उन्हे दुवारा-तिवारा उन्हीं घरों में प्रवेश करना पडता है ॥११॥

मूल—एवं खलु देवाणुप्पिया ! अमं भदिलपुरे नयरे नागस्स गाहावडस्स पुत्ता सुलसाए भारियाए अत्तया छ भायगे सहोदरा, सरिसया जाव नलकुब्बरसमाणा अरहत्थो अरिडुत्तेमिस्स अंतिए धम्मं सोच्चा गिसम्म मंसारभउव्विग्गा भीया जम्मणमरणायं सुं डा जाव पव्वइया ॥२॥

अर्थ—(मुनियो ने आगे कहा—) हे देवानुप्रिये ! भदिलपुर नगर में रहने वाले नाग गाथापति के पुत्र और मुनना नामक भार्या के आत्मज हम छहों सहोदर भाई हैं। हम एक सरीखे यावत् नलकूबर के समान एक-से दिलाई देते हैं। हम छहों भाइयो ने अहंत् अरिष्टेमि से धर्म श्रवण करके और अवधारण करके, संसार के भय से उद्विग्न होकर और जन्म-मरण से भयभीत होकर भगवान् के निकट मुंडित होकर दीक्षा अंगीकार की है ॥१२॥

मूल— तए णं अमहे जं चेव दिवसं पव्वइया तं चेव दिवसं अरहं अरिडुत्तेमि वंदामो नमंसामो, इमं एयाइवं अभिग्गहं अभिगिणहामो-इच्छामि ण भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुणयाया समाणा जावज्जीवाए छट्ट छट्ठेणं जाव विहरामो । तं अमहे अज्ज छट्ठसखमणपारणयसि पटमाए पोत्तीए लाव अडमाणा तव गेहं अणुप्पविट्ठा । तं नो खलु देवाणुप्पिए । तं चेव णं अमहे, अमहे णं अरणे ॥१३॥—१४॥

अर्थ—तब हमने जिन दिन दीक्षा धारण की, उसी दिन अहंत् अरिष्टेमि को वन्दना नमस्कार करके इस पत्तार अभिग्रह धारण किया-भगवन् ! आपकी आज्ञा हो तो हम यावज्जीवन निरन्तर वेले-वेले का तप करना चाहते हैं। भगवान् ने रहा-जैमे मुग हो वंना करो। तभी से हम भगवान् की आज्ञा प्राप्त करके वेले-वेले का शरणा करते

विचरते है। आज वेले के पारणक के दिन प्रथम प्रहर मे स्वाध्याय करके, दूसरे प्रहर में ध्यान करके यावत् भगवान् की आज्ञा लेकर तीन मंघाड़े करके भिक्षा के लिए अटन करते हुए तुम्हारे घर मे आये। अतएव हे देवानुप्रिये ! हम वह नहीं हैं जो पहले आए थे। हम दूसरे है ॥१३-१४॥

मूल—देवइं देवि एवं वयइ वइत्ता जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया ॥१५।

अर्थ—देवकी देवी को इस प्रकार कहकर मुनि जिस विद्या से आये थे, उसी विद्या मे लौट गये ॥१५॥

मूल—तए णं तीसे देवईए देवीए अयमेवारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पन्ने—एवं खलु अहं पोलासपुरे शयरे अइमुत्ते णं कुमारसमणेणं बालत्तणे वागरिया—तुमं णं देवाणुप्पिए ! अट्ट पुत्ते पयाइस्ससि, सरिसए जाव नलकुव्वर समाणे । नो चेव णं भारहे वासे अण्णाओ अम्मयाओ तारिसए पुत्ते पयाइस्संति तं णं भिच्छा ॥१६॥

अर्थ—तब उस देवकी देवी को इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ—निश्चय ही पोलासपुर नगर में अतिमुक्तक कुमार श्रमण ने बचपन में ऐसा कहा था कि हे देवकी ! तू आठ पुत्रों का प्रसव करेगी। वे आठो पुत्र एक सरीखे यावत् नलकूबर के समान सुन्दर होंगे। वैसे पुत्रों को इस भरत क्षेत्र में दूसरी माताएँ जन्म नहीं देती। उनका यह कथन मिथ्या हुआ ॥१६॥

मूल—इमं पच्चक्खमेव दिस्सइ-भारहे वासे अण्णाओ वि अम्मयाओ खलु एरिसए जाव पुत्ते पयायाओ ॥१७॥

अर्थ—यह तो प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है कि भरत क्षेत्र मे अन्य माताओं ने भी इस प्रकार के सुन्दर यावत् पुत्रों का प्रसव किया है ॥१७॥

मूल—तं गच्छामि णं अरुहं अरिदुर्नेमिं वंदामि नमंसामि, इमं च णं एयारुवं चागरणं पुच्छिस्सामि चि कट्टु एवं संपहेड, संवेहिच्चा कोट्टुवियपुरिसे सदावेड, सदावित्ता एवं वयासी-लहुकरण-जाणप्परं जाव उवडुवेति जज्ञ देवाणंदा जाव पज्जुवासड् ॥१८॥

अर्थ—देवी देवकी ने आगे विचार किया—सो मैं अहंत् अरिदुर्नेमि के पास जाऊँ, उन्हें वन्दना-नमस्कार कल और यह प्रश्न पूछूँ। ऐसा विचार करके उसने कीदृम्बिक पुरुषों को बुलाया और कहा—शीघ्र गति वाला उत्तम रथ उपस्थित करो। यावत् कीदृम्बिक पुरुषों ने रथ उपस्थित किया। देवकी उस पर आलुड हुई और जिस प्रकार भगवती मृत में स्थित देवानन्दा ब्राह्मणी भगवान् के दर्शन करने गई थी, उसी प्रकार देवकी देवी भी भगवान् अरिदुर्नेमि के दर्शन करने गई यावत् सेवा-भक्ति करने लगी ॥१८॥

मूल—तए णं अरहा अरिदुर्नेमी देवडं देवि एवं वयासी से एणं तव देवई ! इमे छ अणगारे पासेत्ता अयमंयारुवं अज्झरिथाए जाव समुप्पजेत्था-एवं खलु पोलासपुरे नयरे अडुमुत्तएणं तं चेव जाव णिग्गच्छित्ता जेणेव ममं अंतियं तेणव हव्वमागया । से एणं देवई अडु समडे ? हंता अत्थि ॥१९॥

अर्थ—तव अहंत् अरिदुर्नेमि ने देवकी देवी से कहा—देवकी ! इन छह अनगारों को देख कर तुम्हें इस प्रकार का अर्थमाग्य यावत् उत्पन्न हुआ कि—पोलामपुर नगर में अतिमुक्तक अनगर ने कहा था, इत्यादि पूर्ववत्। इस सशय को दूर करने के लिए तुम यहाँ आई हो। हे देवकी ! यह बात यथार्थ है ? देवकी बोली—हाँ यथार्थ है ॥१९॥

मूल—एवं खलु देवाणुप्पिए ! तेणं कालेणं तेयं समएणं भदिलपुरे खयरे याने यामं गाहावई परिवसड, अडु ॥२०॥

अर्थ—हे देवानुप्रिये देवकी ! उस काल और उस समय में भद्रिलपुर नगर में नाग नामक गाथापति निवास करता था । वह ऋद्धिमान् यावत् अपराभूत था ॥२०॥

मूल—तस्स णं नागस्स गाहावइस्स सुलसाणामं भारिया होत्था ॥२१॥

अर्थ—उस नाग गाथापति की पत्नी का नाम सुलसा था ॥२१॥

मूल—सा सुलसा गाहावइणी बालचेणं चेव नेभिच्चएणं वागरिया—एस णं दारिया णिदु भविस्सइ ॥२२॥

अर्थ—वह सुलसा गाथापतिनी जब बाल्यावस्था में थी, तब नैमित्तिक ने कहा था—यह बालिका मृतवच्चया होगी अर्थात् इसके मरे हुए बच्चे होंगे ॥२२॥

मूल—तए णं सा सुलसा बालप्पभिति चेव हरिणगमेसी देवमत्तया यावि होत्था । हरिणगमेस्सिस्स पडिमं करेइ, करेत्ता कल्लाकल्लि एहाया जाव पायच्छिता उल्लपडसाडिया महरिहं पुप्फच्चणं करेइ, करेत्ता जाणुपायपडिया पणामं करेइ, करेत्ता तत्रो पच्छा आहारेइ वा नीहारेइ वा । २३॥

अर्थ—तब से सुलसा बाल्यावस्था से ही हरिणगमेषी देवता की भक्त बन गई । उसने हरिणगमेसी देवता की प्रतिमा बनवाई । प्रतिमा बनवा कर प्रतिदिन स्नान करके, शुद्ध होकर, मंगल कौसुक एवं प्रायश्चित्त करके, गीली साड़ी पहन कर महान् जन के योग्य पुष्पों से उस प्रतिमा की पूजा करती और जमीन पर घुटने टेक कर प्रणाम करती थी । तत्पश्चात् ही आहार नीहार आदि कार्य करती थी ॥२३॥

मूल—तए णं तीसे सुलसाए गाहावइणीए भच्चिबहुमाणसुस्ससाए हरिणगमेसी देवे आराहिए यावि होत्था ॥२४॥

अर्थ—तत्र मुलसा गाथापतिनी की भक्ति, बहुमान और शुश्रूषा से हरिणगमेपी देव आराधित हो गया अर्थात् प्रगन्न हो गया ॥२४॥

मूल—तए शं से हरिणगमेसी देवे सुलसाए गाहावइणीए अणुकंपणइयाए सुलसं गाहावइणिं तुमं च शं दीवि मममेव सम उउयाओ कोइ ॥२५॥

अर्थ—तत्र हरिणगमेपी देव ने मुलसा गाथापतिनी की अनुकम्पा के लिए हे देवकी ! तुझे और मुलसा-दीनों को एक ही नाय चतुवती किया ॥२५॥

मूल—तते शं तुम्भे दो वि सममेव गब्भे गिएहह, सममेव गब्भे परिवहह, सममेव दारए पयायह ॥२६॥
अर्थ—तत्पश्चात् तुम दोनों एक ही साथ गर्भ ग्रहण करने लगी, एक ही साथ गर्भ वहन करने लगी और एक ही नाय प्रसव करने लगी ॥२६॥

मूल—तए शं सा मुलसा गाहावइणी विणिहायमावणणे दारए पयाइति ॥२७॥

अर्थ—तत्र वह मुलसा गाथापतिनी मृतक बच्चों को जन्म देने लगी ॥२७॥

मूल—तए शं से हरिणगमेसी देवे सुलसाए गाहावइणीए अणुकंपणइयाए विणिहायमावणणे दारए करयलसंपुडेणं गेएहइ, गेरिहत्ता तत्र अंतियं साहरइ, साहरित्ता तं समयं च शं तुमं पि नवरहं मासाणं मुहुमालदारए पसवमि, जे वि य शं देवाणुप्पिए ! तव पुत्ता ते वि य तव अंतियाओ करयलसंपुडेणं गेएहइ, गेरिहत्ता मुलसाए गाहावइणीए अंतिए साहरइ, तं तव चेव शं देवइ ! एए पुत्ता, शो चेव शं सुलसाए गाहावइणीए पुत्ता २८-२९॥

अर्थ—तब हरिणगमेपो देव सुलसा गाथापतिनी की अनुकम्पा के लिए उसके मरे बालको को करतल-संपुट में (मिले हुए दोनो हाथो मे) ग्रहण करके तेरे पास ले आता था । उसी समय नौ मास पूर्ण होने पर तू सुकुमार बालकों को जन्म देती थी । सो तेरे वच्चो का संहरण करके करतल-सपुट में लेकर सुलसा के पास ले जाता था । इस कारण हे देवकी ! वे छह अनगार तेरे पुत्र है, परन्तु सुलसा गाथापतिनी के पुत्र नहीं है ॥२८-२९॥

मूल—तए णं सा देवई देवी अरहओ अरिद्धनेमिस्स अंतिए एयमड्डं सोच्चा णिसम्म हड्डतुड्ढ जाव हियया, अरहं अरिद्धनेमिं वंदइ नमंसइ, वदिता नमंसित्ता जेषेव ते छ अणगारा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ते छप्पि य अणगारे वंदइ नमंसइ, वदिता नमंसित्ता आगयपण्हया पफ्फुयलोयणा कंचुयपडिक्खित्तया दरियबलयवाहा धाराहयकलंबंपुफ्फुगं पिव समूससियरोमकूवा ते छप्पि अणगारे अणिमिसाए दिट्ठीए पेहमाणी पेहमाणी सुचिरं णिरिक्खइ, णिरिक्खित्ता वंदइ, वदिता नमंसइ, नमंसित्ता जेषेव अरहा अरिद्धणेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहं अरिद्धनेमिं तिवसुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वदिता नमंसित्ता तमेव धम्मियं जाणप्परं दुरुहइ, दुरुहित्ता जेषेव वारवई णयरी तेणेव उवागच्छइ, वारवइं नयरिं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जेषेव सए गिंहं जेषेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धम्मियाओ जाणप्परवाओ पच्चोरूहइ, पच्चोरूहित्ता जेषेव सए वासघरए जेषेव सए सयणिज्जे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सयंसि सयणिज्जंसि निसीयइ ॥ ३० ॥

अर्थ—तब देवकी देवी अर्हत् अरिष्टनेमि से यह विषय सुनकर और अवधारण करके हर्षित और सतुष्ट हृदय वाली हुई । उसने अर्हत् अरिष्टनेमि को वन्दना-नमस्कार किया । वन्दना-नमस्कार करके जहाँ वे छह अनगार थे, वहाँ

पढ़नी । पढ़ने कर उन छहों अनगारों को वन्दन-नमस्कार किया । वात्सल्य रस की अविकता के कारण देवकी के स्तनो से दूध जरने लगा । नेत्र प्रफुल्लित हो गये । उसकी कटुकी (चोली) तंग हो गई । हाथों के वलय (बूड़े) तंग हो गये । जैसे मेन की धारा ने निश्चित कदम्ब का पुष्प विकसित हो जाते हैं उसी तरह देवकी का रोम रोम विकसित हो उठा । वह उन छहों अनगारों को बहुत देर तक टकटकी लगा कर देखती रही । फिर उनको वन्दना-नमस्कार करके अर्हत् अरिष्टनेमि के पास आई और तीन बार आर्द्रक्षिण प्रदक्षिणा करके, वन्दना-नमस्कार करके उसी धर्मयात्रा के काम आने वाले श्रेष्ठ रथ पर गवार हुई । सवार होकर द्वारवती नगरी की ओर चली । नगरी में प्रवेश करके जहाँ अपना घर था और जहाँ बान्ग नभाभवन था, उसी ओर गई । उस धार्मिक रथ से नीचे उतरी । फिर जहाँ उसका अपना वासगृह था और जहाँ अपनी दाब्या थी, वहाँ पहुंच कर शय्या पर बैठ गई ॥३०॥

मूल—तए खं तीसे देवईए देवीए अयं अङ्कस्थिए ४ समुष्पएणे एत्रं खलु अहं सरिसए जाव नल-
कुञ्जरसमाणे सत्त पुत्ते पयाया, नो चेव णं मए एगस्स वि वाल्लराणए समुभूए; एस वि य णं कण्हे वासुदेवे
छण्हं २ मासाणं ममं अंतियं पायवंदए हव्वमागच्छ्ह ॥३१॥

अर्थ—तत्पश्चात् देवकी देवी को उस प्रकार का अव्यवसाय यावत् सकल्प उत्पन्न हुआ—मैंने एक सरीसे यावत् ननपुत्र के सगान नुन्दर सात पुत्रों का प्रसव किया, परन्तु निश्चय ही मैंने एक भी बालक के शंशव से आनन्दानुभव नहीं किया । यह कृष्ण वासुदेव हे सो भी छह-छह महीने में चरण-वन्दना करने आता है—वह भी प्रतिदिन दिखाई नहीं देता ।३१।

मूल—तं धन्वाओ खं ताओ अम्मयाओ ४ जासि मएणे णियगकुञ्छिमभूयाइं थणदुद्धलुदाइं
मत्तरममुल्लावयाइं मम्मणपर्जपियाइं थणमूलकखवेसभागं अभिसरमाणाइं सुद्धयाइ पुणो य कोमल कमलो-
वमेदिं इत्थेदिं निण्हणं उच्छंणे णिवेसियाइं देति सम्मुल्लावए सुमहुरे पुणो पुणो मंजुलप्पमणिए ॥३२॥

अर्थ—वास्तव में वे माताएँ धन्य हैं, पुण्यवती है जो अपनी कूख से उत्पन्न हुए, स्तनों के दूध में लुब्ध बने हुए, मधुर-मधुर वचन बोलने वाले, स्तनमूल एवं कांख के भाग में अधिसरण करने वाले बच्चों को अपने कमलवत् कोमल हाथों से ग्रहण करती है, गोदी में बिठलाती है, और मीठी-मीठी तोतली बोली बोलती है ॥३२॥

मूल—अहं णं अधन्ना अपुण्णा अकयपुण्णा एत्तो एगयरमवि न पत्ता, ओहयमणसंकप्पा जाव भियायइ ॥३३॥

अर्थ—देवकी पुनः सोचती है—मैं अधन्य हूँ, पुण्यहीना हूँ. मैंने पुण्योपाजन नहीं किया है, जिससे सात बालकों में से एक को भी बचपन में न प्राप्त कर सकी। इस प्रकार मलिनमन होकर यावत् चिन्ता करने लगी ॥३३॥

मूल—इमं च णं करहे वासुदेवे एहाए जाव विभूसिए देवईए पायवंदिए हव्वमागच्छइ ॥३४॥

अर्थ—इधर कृष्ण वासुदेव स्नान करके यावत् विभूषित हुए और देवकी देवी के चरणों में वन्दना करने के लिए शीघ्र आये ॥३४॥

मूल—तए णं से करहे वासुदेवे देवइं देवि पासइ, पासित्ता देवईए पायग्गहण करेइ, करिच्चा देवइं देवि एवं वयासी-अण्णया णं अम्मो ! तुब्भे ममं पासित्ता हइ जाव भवह, किण्णं अम्मो ! अज्ज तुब्भे ! ओहय जाव भियायह ॥३५॥

अर्थ—तब कृष्ण वासुदेव की देवकी देवी पर दृष्टि पड़ी। उन्होंने देवकी देवी के चरण छुए और फिर कहा—माँ ! अन्य समय तुम मुझे देख कर हर्षित हृदय होती थी; मगर माता ! क्या कारण है कि आज मलिनमन होकर चिन्ता कर रही हो ? ॥३५॥

मूल—तए शं से देवई देवी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी-एवं खलु अहं पुत्ता ! सरिसए जाव समाणे सत्त पुत्ते पयाया, नो चेत्र शं मया एगस्स वि वालत्तणे अनुभूए, तुमं पि य शं पुत्ता ! ममं छण्हं छण्हं मासाणं ममं अंतियं पायवंदए हव्वमागच्छसि । तं धनाओ शं ताओ अम्मयाओ जाव भियामि ॥३६॥

अर्थ—तत्र देवकी देवी ने कृष्ण वामुदेव से इस प्रकार कहा—पुत्र ! मैंने एक सरीले यावत् नलकुबेर समान सुन्दर सात पुत्रों को जन्म दिया, मगर एक के भी गैंगव का आनन्द अनुभव नहीं किया । हे पुत्र ! तुम भी छह-छह महीने में चरणवन्दन के लिए मेरे पास आते हो । अतएव वन्य है वे माताएँ जो अपनी कूँख से उत्पन्न बच्चों को दूध पिलाती है और उनही तोतली बोलती का आनन्द अनुभव करती है, ऐसा सोच कर चिन्तित हो रही हूँ ॥३६॥

मूल—तए शं से कएहे वासुदेवे देवई' देविं वयासी मा शं तुभे अम्मो ! ओहय जाव भियायह, अहगणं तथा वत्तस्सामि जहा शं मम सहोदरए कणीयसे भाउए भविस्सति तिकट्टु देवई' देविं ताहि इट्ठाहि कंताहि जाव वग्गूहि समासासइ, समासासेत्ता तओ पडिणिवखमइ, पडिणिवखमित्ता जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता जहा अभओ, शवरं हरिणगमेसिस्स अट्टमभत्तं पगेएहइ, जाव अंजलिं कट्टु एवं वयासी-इच्छामि शं देवाणुप्पिया ! सहोदरं कणीयसं भाउयं विदिणणं ॥३७॥

अर्थ—तत्रपश्चात् कृष्ण वामुदेव ने देवकी देवी से इस प्रकार कहा—माता ! मन मलिन मत करो, चिन्ता मत करो, मैं ऐसा प्रयत्न करने का कि मेरे छोटे भाई का जन्म हो । इस प्रकार देवकी देवी को इष्ट, कान्त यावत् वचनों से आशानन देकर वहाँ से निकले और जहाँ पोषधगाला थी, वहाँ पहुँचने और जैसे (जातासूत्र में कहे अनुसार) अभयकुमार ने देखा ता आशानन किया था, उसी प्रकार कृष्ण वामुदेव ने भी आशानन किया । केवल विशेषता यह है कि कृष्ण

ने हरिणगमेपी देव को लक्ष्य करके तेला किया । जब देवता आया तब कृष्ण ने हाथ जोड़ कर इस प्रकार कहा—देवानु-
प्रिय ! मैं एक सहोदर छोटा भाई आपके द्वारा प्रदत्त चाहता हूँ । अर्थात् आप दीजिए ॥३७॥

मूल—तए णं से हरिणगमेसी देवे कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—होहिइ णं देवाणुप्पिया ! तव देवलोग
सुए सहोदरे कणीयसे भाउए; से णं उम्भुक्कबालभावे जोध्वण्णमणुपचे अरहत्थो अरिदुत्तेमिस्स अंतिए सुंडे
जाव पव्वइस्सति । कएहं वासुदेवं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वदइ, वदित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं
पडिगए ॥३८॥

अर्थ—तब हरिणगमेपी देव ने कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रिय ! देवलोक से च्युत होकर
तुम्हारा सहोदर छोटा भाई उत्पन्न होगा । वह बाल्यावस्था से मुक्त होकर, यौवन अवस्था प्राप्त होने पर अर्हत् अरिष्टनेमि
के पास मुण्डित होगा यावत् दीक्षा ग्रहण करेगा । देवता ने दो बार और तीसरी बार भी ऐसा कहा । ऐसा कह कर वह
जिस दिशा से आया था उसी दिशा में लौट गया ॥३८॥

मूल—तए णं से कएहे वासुदेवे पोसहसालात्थो पडिण्णिकखमइ, पडिण्णिकखमित्ता जेणेव देवई देवी
तेणेव उवागच्छइ । उवागच्छित्ता देवईए देवीए पायगहणं करेइ, करेत्ता एवं वयासी—होहिइ णं अम्मो ! मम
सहोदरे कणीयसे भाउ च्चिकहुं देवइ देवि इट्ठाहि जाव आसासेइ, असासेत्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं
पडिगए ॥३९॥

अर्थ—तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव पोषधशाला से बाहर निकले और देवकी देवी के पास गए । देवकी देवी के चरण
छुए और फिर इस प्रकार कहा—‘माता ! मेरे सहोदर छोटे भाई का जन्म होगा’ इस प्रकार कह कर देवकी देवी को

आश्वानन दिया । आश्वानन देकर जिस दिशा से आए थे, उसी दिशा में लौट गए ॥३६॥

मूल—तए णं सा देवई देवी अणया कयाइं तंसि वारिसगसि जाव सीहं सुमिणे पासित्ताणं पडि-
बुद्धा जाव हड्डुड जाव हियया तं गम्भं सुहं सुहेणं परिवहइ ॥४०॥

अर्थ—तत्पश्चात् देवकी देवी ने अन्यदा कदाचित् पुण्यवन्त के गयन करने योग्य उत्तम शय्या पर सोते समय सिंह
ला स्नान देया । देव कर जागृत हुई यावत् हृष्ट-तुष्ट हृदय वाली हुई । उस गर्भ को सुले-सुले बहन करती हुई
रहने लगी ॥४०॥

मूल—तए णं सा देवई देवी नत्रणहं मासाणं जासुमणारत्तवंधुजीवयलक्खारससरस परिजातकतरुण-
दिवाकरसमप्पमं सव्वनयणकंतं सुकुमालं जाव सुखं गयतालुयसमाणं दारयं पयाया ॥४१॥

अर्थ—तत्पश्चात् देवकी देवी ने नौ महीने पूर्ण होने पर जपाकुमुम, बबूक के पुष्प, लाक्षारस तथा पारिजात एवं
उदित होते हुए सूर्य के समान प्रभा वाले, सब के नेत्रों को प्रिय, सुकुमार यावत् सुन्दर रूप वाले एव हाथी की तालु के
समान बालक को जन्म दिया ॥४१॥

मूल—जम्मणं जहा मेहकुमारो, जाव जम्हा णं अम्म इमे दारए गयतालुसमाणे तं होउ णं अम्म
एयस्स दारयस्स नामधेज्जे गयसुकुमाले ॥४२॥

अर्थ—जन्मोत्सव ज्ञातामूत्र में वर्णित मेघकुमार के समान समझना चाहिए । यावत् हमारा यह बालक गज की
तालु के समान गुठुमार है, अतः हमारे इस बालक का नाम 'गजसुकुमार' हो ॥४२॥

मूल—तए णं तस्स दारयस्स अम्मापियरो नामं करेति गयसुकुमाले त्ति । सेसं जहा मेहे, जाव

अलं भोगसमत्थे जाते यावि होत्था ॥४३॥

अर्थ—तब माता-पिता ने उस बालक का नाम 'गजसुकुमार' स्थापन किया । शेष वर्णन मेघकुमार के समान समझना चाहिए यावत् वह पूर्ण भोग भोगने में समर्थ हो गया ॥४३॥

मूल—तत्थ णं वारवईए शयरीए सोमिले नामं माहणे परिवसइ, अहुं, रिउव्वेय जाव सुपरिनिड्डिए यावि होत्था ॥४४॥

अर्थ—द्वारिका नगरी में सोमिल नामक ब्राह्मण निवास करता था । वह ऋद्धिमात् और ऋग्वेद आदि चारों वेदों में तथा ब्राह्मणों के शास्त्रों में निपुण था ॥४४॥

मूल—तस्स णं सोमिलस्स माहणस्स सोमसिरिणामं माहिणी होत्था, सुकुमाला जाव सुरूवा ॥४५॥

अर्थ—उस सोमिल ब्राह्मण की सोमश्री नामक ब्राह्मणी (भार्या) थी । वह सुकुमारी यावत् सुरूपवती थी ॥४५॥

मूल—तस्स णं सोमिलस्स माहणस्स धूया सोमसिरीए माहणीए अत्तया सोमाणामं दारिया होत्था, सुकुमाला जाव सुरूवा, रूवेणं जाव लावण्णेणं उक्किट्टा उक्किट्टसरीरा यावि होत्था ॥४६॥

अर्थ—उस सोमिल ब्राह्मण की पुत्री एवं सोमश्री ब्राह्मणी की आत्मजा सोमा नामक लड़की थी । वह सुकुमारी यावत् रूपवती थी । वह रूप यावत् लावण्य से उत्कृष्ट थी और उत्कृष्ट शरीर वाली थी ॥४६॥

मूल—तए णं सा सोमा दारिया अन्नया कयाइ ण्हाया जाव विभूसियाो बहूहि सुज्जाहि जाव परिविखत्ता सयाओ गिहाओ पडिणिवस्समइ, पडिणिवखमिच्चा जेणेव रायमगे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छत्ता।

गयमगंसि कणगतिदूसणं कीलमाणी चिड्डइ ॥४७॥

अर्थ—वह मोमा लड़की अन्यदा किसी समय स्नान करके तथा वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर बहुत-सी कुब्जा आदि वानियों से यावत् परिवृत होकर अपने घर से निकली। निकल कर राजपथ की ओर गई और राजपथ पर सोने की गंद से क्रीड़ा करने लगी ॥४७॥

मूल—तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिड्ढनेमी समोसडे । परिसा शिगया । ४८॥

अर्थ—उस काल और उस समय मे अहंत् अरिष्टनेमि का पदार्पण हुआ। धर्मदेशना सुनने के लिए जनसमूह निकला ॥४८॥

मूल—तए णं से करहे वासुदेवे इमीसे कहाए लद्धडे समाणे एहाए जाव विभूसिए, गयसुकुमालेण सदिं दथियंघवरगए सकोरंटमल्लदामेणं छरोणं धारिज्जमाणेणं सेयवरचामराहि उद्धुव्वमाणीहि वारवईए गयरीणं मल्लकं मल्लेणं अरह्ओ अरिड्ढनेमिस्स पायवंदए निगच्छमाणे सोमं दारियं पासइ, पासित्ता सोमाए दागियाए सूवेण य जोव्वणेण य लावएणेण य जाव विभिहए ॥४९॥

अर्थ—तब कृष्ण वासुदेव भगवान् के आगमन की वधाई पाकर हृष्ट-तुष्ट हुए। उन्होंने स्नान किया यावत् निगार किया। फिर कुमार गजकुमार के साथ, हाथी पर आरूढ हुए। कोरट की माला का छत्र धारण किया। उत्तम श्रेण चागर डोरे जाने लगे। इन प्रकार वे द्वारवती नगरी के बीचो बीच होकर अहंत् अरिष्टनेमि की चरणवन्दना के लिए जा रहे थे कि मोमा नटनी पर उतनी दृष्टि पड़ी। उसके रूप, यौवन और लावण्य को देख कर कृष्ण यावत् विस्मित हुए ॥४९॥

मूल—वण्णं करहे वासुदेवे कोडुंविपयपुरिसे सदावंडे, सदाविचा एवं वयासी-गच्छह णं तुग्भे

देवाणुष्यिया ! सोमिलं माहृणं जाइत्ता सोमं दारियं गेरहृह, गेरिहत्ता कएणतेउरंसि पक्खिवह । तए णं एसा गजसुकुमालस्स कुमारस्स भारिया भविस्सइ । तए णं कोडुंबियपुरिसा जाव पक्खिअंति ॥५०॥

अर्थ—तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलवाया और बुला कर कहा—देवानुप्रियो ! तुम जाओ और सोमिल ब्राह्मण से याचना करके सोमा लड़की को ग्रहण करो और उसे कन्या—अन्तःपुर में रख दो । बाद में यह लड़की गजसुकुमार कुमार की भार्या होगी । तब कौटुम्बिक पुरुष कृष्ण वासुदेव की आज्ञा के अनुसार यावत् उस लड़की को अतःपुर में रख देते हैं ॥५०॥

मूल—तए णं से कण्हं वासुदेवे वारवईए णयरीए मडमं मज्जेणं णिगगच्छइ, णिगगच्छिता जेषेव सहस्संभवणे उज्जाणे जाव पज्जुवासइ ॥५१॥

अर्थ—तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव द्वारवती नगरी के बीचोंबीच होकर निकलते हैं और जहाँ सहस्राश्रवन नामक उद्यान था, जहाँ अर्हत् अरिष्टनेमि थे, वहाँ जाकर यावत् पथुपासना करते हैं ॥५१॥

मूल—तए णं अरहा अरिद्धनेमी कएहस्स वासुदेवस्स गयसुकुमालस्स तीसे य धम्मकहा ॥५२॥

अर्थ—तत्पश्चात् अर्हत् अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव को, गजसुकुमार को और उस महापरिषद् को धर्मकथा सुनाई ॥५२॥

मूल—कएहे पडिगए ॥५३॥

अर्थ—धर्मकथा सुन कर कृष्ण चले गये ॥५३॥

मूल—तए ग गयसुकुमाले अरअहो अरिड्डनेमिस्स अंतियं धम्मं सोत्त्वा जाव एवं वयासी—जं नवरं देवाणुप्पिया ! अम्मापियरं आपुच्छामि, जहा मेहो; एवरं महिलियावज्जं, जाव वड्डियकुले ॥५४॥

अर्थ—तत्तज्जान् गजनुकुमार अर्हेत् अरिड्डनेमिनाय से धर्म श्रवण कर यावत् इस प्रकार बोला—हे देवानुप्रिय ! मैं माता-पिता से आज्ञा लेता हूँ, फिर आपके निकट दीक्षा अंगीकार करूँगा ।

गजनुकुमार ने मेत्रकुमार की तरह माता-पिता से पूछा । परस्पर प्रश्नोत्तर हुए (जिसमे स्त्रियो का उल्लेख नहीं करना) यावत् कुल की वृद्धि करके दीक्षा लेना, ऐसा कहा ॥५४॥

मूल—तए गं करहे वासुदेवे इमीसे कहाए लद्धडे समाणे जेषेव गयसुकुमाले तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता गयसुकुमालं कुमारं आलिंणइ, आलिंणित्ता उच्छंणे निवेसेइ, निवेसित्ता एवं वयासी—तुमं सि णं ममं सहोदरे कणीयसे भाया, तं मा णं देवाणुप्पिया ! इयाणि अरहअओ अरिड्डनेमिस्स अंतिए मुंडे जाव पव्व—यादि अन्नएणं वारवईए नयरीए महया महया रायाभिसेएण अभिसिचिस्सामि ॥५५॥

अर्थ—तत्र कृष्ण वानुदेव यह समाचार सुनकर गजनुकुमार के पास आये । आकर गजनुकुमार को आलिंगित्ता, गौर में बिठनाया और फिर कहा—तू मेरे एक ही छोटा सहोदर भ्राता है । अतएव हे देवानुप्रिय ! इस समय अहंता अरिड्डनेमि भगवान् के निकट मुंडित होकर यावत् प्रव्रजित मत हो । बहुत ठाठ के साथ द्वारिका नगरी के राजा के दर में तुम्हारा राज्याभियेक करूँगा ॥५५॥

मूल—तए णं से गयसुकुमाले कुभारे करहेणं वासुदेवेणं एवं बुत्ते समाणे तुसिणीए संचिड्डइ ॥५६॥

अर्थ—तत्र गजनुकुमार कुमार कृष्ण वानुदेव के इस प्रकार कहने पर मोन हो रहे ॥५६॥

मूल—तए शं से गयसुकुमाले कुमारे कएहं वासुदेवं अस्मापियरं य दोळवं पि तच्चं पि एवं वयासी-एवं खलु देवाणुपिया ! माणुस्सया कामा खेलासवा जाव विप्पजहियव्वा भविस्संति ॥५७॥

अर्थ—तब गजसुकुमार कुमार ने कृष्ण वासुदेव से और माता-पिता से इस प्रकार कहा-देवानुप्रियो ! मनुष्य सबधी कामभोग श्लेष्म (कफ) के समान है यावत् अवश्य ही त्यागने होंगे (तो फिर अभी त्याग देना ही श्रेयस्कर है) ॥५७॥

मूल—तं इच्छामि शं देवाणुपिया ! तुभेहिं अब्भणुणए समाणे अरहत्तो अरिड्डनेमिस्स अंतिए जाव पव्वइत्तए ॥५८॥

अर्थ—अतएव देवानुप्रियो ! मैं आपकी अनुमति प्राप्त कर अहंत् अरिष्टनेमि के पास यावत् दीक्षा अंगीकार करना चाहता हूँ ॥५८॥

मूल—तए शं तं गयसुकुमालं कएहे वासुदेवे अस्मापियरो य जाहे नो संचाएति बहुयाहिं अणुलोमाहिं जाव आघवित्तए ताहे अकामाईं चेव एवं वयासी-इच्छामो शं ते जाया ! एगदिवसमविं रज्जसिंरिं पासित्तए (तए शं से गयसुकुमाले कएहेणं वासुदेवणं अस्मापियरेणं एवं बुत्ते समाणे तुसिणीए संचिइइ) ॥५९॥

अर्थ—तब, जब गजसुकुमार को कृष्ण वासुदेव और माता-पिता बहुत-सी अनुकूल बातों से यावत् समझाने में समर्थ न हुए तो इच्छा न होने पर भी इस प्रकार बोले-हे पुत्र ! हम एक दिन के लिए भी तुम्हारी राज्यश्री देखना चाहते हैं । तब कृष्ण वासुदेव और माता पिता के इस प्रकार कहने पर गजसुकुमार मीन हो रहे ॥५९॥

मूल—तए शं से कएहे वासुदेवे कोडुं वियपुरिसे सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी-खिप्पामेव भो

देवानुपिया ! गयसुकुमालस्म मत्स्थं जात्र रायाभिसेहं उवडुवेह ॥६०॥

अर्थ—तन्जान् कृष्ण वामुदेव ने कीदृम्बिक पुरुषों को बुलवा कर कहा—देवानुप्रिय ! शीघ्र ही गजसुकुमार कुमार के महान् अर्थ वाले राज्याभियेक की तैयारी करो ॥६०॥

मूल—तए खं ते कोडुवियपुगिसा जात्र उवडुवेति । ६१॥

अर्थ—तत्र वे कीदृम्बिक पुरुष यात्रव तैयारी करते है ॥६१॥

मूल—तए खं से गयसुकुमाले राया जाए महया जात्र विहरति ॥६२॥

अर्थ—तत्पश्चान् गजसुकुमार राजा हुए, महाहिमवान् पर्वत के समान यात्रव राज्य करते विचरने लगे ॥६२॥

मूल—तए खं तं गजसुकुमालं अम्मापियरो एवं वयासी-भए जाया ! किं दलयामो ? किं पयच्छामो ? किं वा ते द्वियडुच्छिए ? समत्थे ? ॥६३॥

अर्थ—तत्र माता-पिता ने गजसुकुमार से कहा—हे पुत्र ! क्या देवे ? तुम क्या चाहते हो ? क्या तुम्हारी हार्दिक उन्ना है ? तुम क्या करने में समर्थ हो ? ॥६३॥

मूल—तए खं तस्स गयसुकुमालस्स खिण्णमणं जहा महव्वलस्स खिण्णमणं तहा जात्र समंति । ६४॥

अर्थ—तत्र गजसुकुमार ने तीन लाग द्रव्य श्रीभंडार से गृहण करने को कहा । यात्रव दीक्षा-उत्सव का कथन जैना भगवतीन ने गजसुकुमार को कहा है, वैसा मव यहा भी जान लेना चाहिए, यात्रव उन्हीने दीक्षा अंगीकार की ॥६४॥

मूल—तए खं से गयसुमाले जात्र अणुगारे जाए इगियासमिए जात्र सुत्तवंधयारी ॥६५॥

अर्थ—तव गजसुकुमार यावत् अनगार हो गए । ईर्यसिमिति से युक्त यावत् गुप्त ब्रह्मचारी बने ॥६५॥

मूल--तए णं से गयसुकुमाले अणगारे जं चेव दिवसं पव्वइए तस्सेव दिवसस्स पुव्वावरएहकाल समयंसि जेषेव अरहा अरिड्डनेमी तेषेव उवागच्छइ, उवागच्छिता अरहं अरिड्डनेमिं तिकसुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी-इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुएणाए समाणे महाकालंसि सुसाणंसि एगराइयं महापडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्ताए ।

अहामुह देवाणुप्पिया ! मा पडिवंधं करेह ॥६६।

अर्थ--तत्पश्चात् गजसुकुमार ने जिस दिन दीक्षा धारण की, उसी दिन मध्याह्न काल में जहाँ अरिष्टनेमिनाथ थे, वहाँ आये । आकर तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा की । वदना-नमस्कार किया । फिर कहा-भगवन ! आपकी आज्ञा ही तो मैं महाकाल स्मशान में एकरात्रिकी भिक्षु की महाप्रतिमा अंगीकार करने की इच्छा करता हूँ ।

भगवान् ने फर्मिया-जैसे सुख उपजे वैसा करो । उसमें विलम्ब मत करो ॥६६॥

मूल--तए णं से गयसुकुमाले अणगारे अरहया अरिड्डनेमिणा अब्भणुन्नाए समाणे अरहं अरड्डनेमि वंदइ, णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता अरहओ अरिड्डणेमिस्स अंतियाओ सहसंबवणाओ उज्जाणाओ पडिणिकखमइ, पडिणिकखमित्ता जेषेव महाकाले सुसाणे तेषेव उवागच्छइ, उवागच्छिता थंडिलं पडिलेहेइ, उच्चार-पासवणभूमिं पडिलेहेइ, इसिं पब्भारगएणं काएण जाव दोवि पाए साहट्टु एगराइयं महापडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ ॥६७॥

अर्हन्तव गणपुटुमार अनगार अहंत् अरिष्टनेमि भगवान् से आज्ञा प्राप्त होने पर, अर्हन्त् अरिष्टनेमि को वन्दना-
नगन्तव कर्त्तव्यं, उनके प्राप्त में, महत्वात्प्रवृत्त उद्यान से बाहर निकले । निकल कर जहाँ महाकाल स्मशान था, वहाँ पहुँचे ।
पूँज कर जमीन की प्रतिनिधिता ली । फिर कुछ नमै हुए शरीर से यावत् दोनो पर एक स्थान पर (जिनमुद्रा से) स्थापन
कर्त्तव्यं, एतद्विधिं गिन्धुप्रतिमा अगीकार करके विचरने लगे ॥६७॥

मूल--इमं च यं सोमिलं साहणे सामिधेयस्स अट्टाए वारवईओ नयरीओ वद्विया पुव्वण्णिआए
ममियाप्रो य दब्बो य कुसे य पत्ताभोडं च गेएह्ह, गेएिहत्ता ततो पडिनियत्ताह. पडिनियत्ता महाकालस्स
मयागस्स अट्टमाम्भंतेणं वीइयमाणे २ संमाकालसमयंमि पंवरलमणुस्संसि गयसुकुमालं अणगारं पासइ,
पामिन्ना तं वेरं परइ. सरिन्ना श्चामुत्ते एवं वयासी-एस यं भो से गयसुकुमाले कुमारं अप्पत्थिय जाव
परिञ्जिणं जे ए मम धूयं सोममिरीए भारियाए अत्तयं सोम दारियं अदिह्दोसपइयं कालवत्तिणिं
विपज्जेत्ता सुंइ जाव पव्वइए तं सेयं खलु ममं गयमकुमालस्स कुमारस्स वेरणिज्जायणं करेत्तए, एवं संपेह्ह,
येपेत्तिन्ना दिमापडिलेणं करेइ, करिन्ना सरसं मड्डियं गेएह्ह, गेएिहत्ता जेणव गयसुकुमाले अणगारे तेणव
उयागच्छइ, उयागच्छिन्ना गयसुकुमालस्स अणगारस्स मत्थए पालि वंधइ, वंधिन्ना जलंतीओ
नियियाओ कुञ्जियकिसुयसमाणे खयरंगारे कट्ठलेणं गेएह्ह, गेएिहत्ता गयसुकुमालस्स अणगारस्स मत्थए
पक्कियइ, पक्कियत्तिन्ना भीए तओ खिप्पामेव अवक्कमइ, अवक्कमिन्ना नामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं
पट्ठिणए । ६८॥

अर्थ--इस नोमिग ब्राह्मण यज्ञ के लिए लकड़ियां लेने के लिए बाहर पहले ही गया हुआ था ।

वह लकड़ियाँ, दर्भ, कृश एवं पत्ते लेकर लौटा । लौटकर महाकाल स्मशान से, न बहुत दूर और न बहुत पास से जा रहा था । मध्या का समय था और विरला ही कोई मनुष्य उधर होकर आता-जाता था । ऐसे समय में उसने गजसुकुमार अनगार को देखा और देख कर उसे वैर का स्मरण होते ही वह क्रुद्ध हो उठा और बोला-निश्चय यह वही अनिष्ट (मृत्यु) की चाहना करने वाला यावत् लज्जारहित गजसुकुमार कुमार है, जो यौवन अवस्था को प्राप्त मेरी पुत्री, सोमश्री की आत्मजा सोमा को बिना दोष देखे ही त्याग कर मुडित यावत् प्रव्रजित हो गया है । अतएव मुझे गजसुकुमार कुमार से वैर का बदला लेना ही श्रेयस्कर है । सोमिल ब्राह्मण ने ऐसा विचार किया और विचार करके चारों दिशाओं का अवलोकन किया (कि आसपास में कोई देख तो नहीं रहा है) । तत्पश्चात् उसने गीली मिट्टी ली और गजसुकुमार अनगार के पास पहुँचा । पहुँच कर गजसुकुमार के मस्तक पर मिट्टी की पाल बाँधी । बाँध कर जलती हुई चिता से, फूले हुए पलाश के फूलों के समान खदिर के अगार एक ठीकरे से ग्रहण किये । ग्रहण करके गजसुकुमार अनगार के मस्तक पर डाल दिये । अगार डाल कर वह भयभीत होकर वहाँ से शीघ्र ही भाग गया और जिधर से आया था, उधर ही लौट गया ॥६८॥

मूल--त ए णं से गयसुकुमालस्स अणगारस्स सरीरयंसि वेदणा पाउब्भूया उज्जला जाव दुरहियासा

॥६९॥

अर्थ--तत्पश्चात् गजसुकुमार अनगार के शरीर में अत्यन्त जाज्वल्यमान यावत् दुस्सह वेदना उत्पन्न हुई ॥६९॥

मूल--त ए णं से गयसुकुमाले अणगारे सोमिलस्स माहणस्स मणसा वि अण्णदुस्समाणे तं उज्जलं जाव अहियासेइ ॥७०॥

अर्थ--उस समय गजसुकुमार अनगार ने सोमिल ब्राह्मण पर मन से भी द्वेष न करते हुए उस उज्ज्वल यावत्

दुग्ध वेदना को महन किया ॥७०॥

मूल—तए णं तस्स गयसुकुमालस अणगारस्स तं उज्जलं जाव अहियासेमाणस्स सुभेणं परिणा-
मेणं पमन्थेहिं अज्झवमाणेहिं तदावरणिज्जाण कम्ममाणं खएणं कम्मरयविकिरणकरं अपुव्वकरणं अणुपविट्ठस्स
अणुत्तरे जाव केवलवरणाणदंणणे, समुप्पण्णे तओ पच्छा सिद्धे जाव पहीणे ॥७१॥

अर्थ—उस जाज्वल्यमान यावत् वेदना को सहन करते हुए गजमुकुमार अनगर को शुभ परिणाम के
कारण, प्रगस्त अद्यवमायो के कारण एव ज्ञानावरण तथा दर्शनावरण कर्म का क्षय हो जाने से समस्त कर्म-रण को दूर
करने वाले अपूर्व करण में प्रविष्ट होने पर अनन्त अनुत्तर (सर्वोत्तम) यावत् केवलज्ञान-दर्शन उत्पन्न हो गये।
तपञ्चात् उन्हेनिं निद्धि प्राप्त की यावत् वे सदा के लिए समस्त दुःखों से रहित हो गये ॥७१॥

मूल— तन्व णं अहासंनिहिएहिं देवेहिं 'सम्मं आराहियं' ति कट्टु दिव्वे सुरहिगंधोदए बुड्ढे, दसद्ध-
वन्ने इमुमं निवाइण, चेलुक्खेत्ते कए, दिव्वे य गीयगंधव्वनिनाए कए यात्रि होत्था ॥७२॥

अर्थ—तब वहाँ नमीप में रहे हुए देवों ने 'गजमुकुमार मुनि ने सम्यक् आराधना की' ऐसा सोच कर दिव्य
गुणित गंधोदक की वर्षा ली, पाँच वर्षों के फूलों की वृष्टि की, वस्त्रों की वर्षा करके हर्ष प्रकट किया और गीत एव
गा रनिनाद किया अर्थात् वायों की ध्वनि की ॥७२॥

मूल—तए ण से कएहे वासुदेवे पाउपभायाए जाव जलंते ग्हाए जाव विभूमिए हत्थिखंधवरगए
स होरंटमन्ल्लदाणेणं छरोणं धारेज्जमाणेणं सेयवरचामराहिं उद्धुयमाणहिं २ महया भडचडगरपहगरचंदपरि-
भित्तते वागडं गयरिं मज्झं मज्झेणं जाव अरहा अरिद्धनेमां तेणेव पहारंत्थ गमयाए ॥७३॥

अर्थ—तत्परचाव्-दूसरे दिन प्रभात होने पर यावत् जाज्वल्यमान सूर्य के प्रकट होने पर कृष्ण वासुदेव ने स्नान किया यावत् वस्त्रालकारो से विभूषित हुए, फिर हाथी के स्कंध पर आरूढ हो, कोर्ट (कनेर) की माला का छत्र धारण किये हुए, श्वेत चामर बिजाते हुए, विशाल भटो के समूहों से परिवृत होकर, द्वारवती नगरी के बीचो बीच होकर अरिष्टनेमि के पास जाने के लिए रवाना हुए ॥७३॥

मूल—तए णं से कएहे वासुदेवे वारवईए णयरीए मज्जकं मज्जेणं गिण्णच्छमाणं एगं पुरिसं पासइ—जुएणं जराज्जजरियदेह जाव किलंतं महम्महालायाओ इट्टगरासीओ एग्गेगं इट्टगं गहाय बहिया रत्थापहाओ अंतो गिहं अणुप्पवेसमाणं पासइ ॥७४॥

अर्थ—उस समय कृष्ण वासुदेव ने द्वारवती नगरी के बीचों बीच से निकलते हुए एक पुरुष को देखा । वह बृद्ध जरा से जीर्ण तथा थका था । वह ईंटो के बहुत बड़े ढेर में से एक-एक ईंट लेकर, बाहर राजमार्ग से होकर घर के भीतर प्रवेश करता था-ईंटे घर में रख रहा था ॥७४॥

मूल—तए णं से कएहे वासुदेवे तस्स पुरिसस्स अणुकंपण्डोए हत्थिखंधवरगए चेव एग इट्टगं गिण्णइ, गिण्हिता बहिया रत्थापहाओ अंतो गिहं अणुप्पवेसइ ॥७५॥

अर्थ—तब कृष्ण वासुदेव ने उस पुरुष की अनुकपा के लिए, हस्ती के स्कंध पर बैठे हुए ही एक ईंट उठाई । उठा कर बाहर रथ्या पथ (सड़क के मार्ग) से अन्दर के घर में रख दी ॥७५॥

मूल तए णं कएहेणं वासुदेवेणं एगाए इट्टगाए गहियाए समाणोए अणोगेहिं पुरिससएहिं से महालए इट्टगस्स रासी बहिया रत्थापहाओ अंतोघरंसि अणुप्पवेसिए ॥७६॥

अर्थ—तदन्तर्गतं कृष्ण वामुदेव के द्वारा एक ईंट उठाने पर अनेक सैकड़ों पुरुषों ने इंटों का वह बड़ा ढेर बाहर रखापथ में घर के भीतर रख दिया ॥७६॥

मूल—तए णं से कएहे वासुदेवे नारवईए शयरीए मज्जं मज्जेणं शिगगच्छइ, शिगगच्छिता जेणेव अरहा अरिइनेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता जाव वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता गयसुकुमालं अणगारं अपासमाणे अरहं अरिइनेमि वंदइ, यमंसइ वंदित्ता यमंसित्ता एवं वयासी-कहिं णं भंते ! मम सहोदरे कणीयसे भाया गयसुकुमाले अणगारे ? जएणं अहं वंदामि यमसामि ॥७७॥

अर्थ—तदनन्तर कृष्ण वामुदेव द्वारिका नगरी के बीचोंबीच होकर निकले । निकले कर जहाँ अहंत्वं अरिष्टनेमि थे, वहाँ पहुँचे । पहुँच कर वन्दन-नमस्कार किया । वन्दन-नमस्कार करने के पश्चात् गजसुकुमार अनगर को न देख कर अहंत्वं अरिष्टनेमि से वन्दना-नमस्कार करके पूछा-भगवन् ! मेरे सहोदर लघुभ्राता गजसुकुमार मुनि कहाँ हैं ? उन्हें वन्दना-नमस्कार कर ॥७७॥

मूल—तए णं अरहा अरिइनेमी कएहं वासुदेवं एवं वयासी-साहिए णं करहा ! गयसुकुमालेणं अणगारेणं अप्पणो अइओ ॥७८॥

अर्थ—तव अहंत्वं अरिष्टनेमि ने कृष्ण वामुदेव से इस प्रकार कहा—कृष्ण ! गजसुकुमार अनगर ने अपना अर्थ-प्रयोजन निरु कर लिया है ॥७८॥

मूल—तए णं से कएहे वासुदेवे अरहं अरिइनेमि एवं वयासी-कहएणं भंते ! गयसुकुमालेणं अणगारेणं साहिए अप्पणो अइओ ॥७९॥

अर्थ—तब कृष्ण वासुदेव ने अहंत् अरिष्टनेमि से कहा—भगवन् ! किस प्रकार गजसुकुमार अनगार ने अपना प्रयोजन सिद्ध किया है ? ॥७९॥

मूल—तए णं अरहा अरिद्धनेमी करहं वासुदेवं एवं वयासी-एवं खलु करहा ! गयसुकुमालेणं अणुगारेणं ममं कल्लं पुब्बावरएहकालसमयसि वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी-इच्छामि णं जाव उन्नसंपाज्जित्ताणं विहरइ । तए णं तं गयसुकुमालं अणगारं एगे पुरिसे पासइ, पासित्ता जाव सिद्धे ॥८०॥

अर्थ—तब अहंत् अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा—हे कृष्ण ! गजसुकुमार अनगार ने कल दोपहर के समय मुझे वन्दन-नमस्कार किया और कहा—‘भगवन् ! मैं एक दिन की भिक्षुप्रतिमा अगीकार करके विचरना चाहता हूँ । यावत् वह विचरने लगे । तब गजसुकुमार मुनि को एक पुरुष ने देखा । देखकर उसने उन्हे सहायता दी, जिससे वे यावत् सिद्ध हो गये ॥८०॥

मूल—तं-एवं खलु करहा ! गयसुकुमालेण अणगारेणं साहिए अप्पणो अट्ठो ॥८१॥

अर्थ—इस प्रकार हे कृष्ण ! गजसुकुमार अनगार ने अपना प्रयोजन सिद्ध कर लिया है ॥८१॥

मूल—तए णं से करहे वासुदेवे अरहं अरिद्धनेमिं एवं वयासी-से के णं भंते ! पुरिसे अप्पत्थिय-पत्थिए जाव परिवज्जिए, जेणं ममं सहोदरं कणीयसं भायरं गयसुकुमालं अणगारं अकाले चेव जीवियाओ ववरोत्रिए ? ॥८२॥

अर्थ—तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने अहंत् अरिष्टनेमि से कहा—भगवन् ! वह अप्राथित (मृत्यु) का प्रार्थी यावत् लज्जा से रहित पुरुष कौन है, जिसने मेरे सहोदर छोटे भ्राता गजसुकुमार को अकाल मे ही जीवन रहित कर दिया ॥८२॥

मूल—तए णं अरहा अरिद्धनेमी कहं वासुदेवं एवं वयासी-मा णं कएहा ! तुमं तस्स पुरिसस्स पदांसमाधज्जाहि, एवं खलु कएहा ! तेण पुरिसेण गयसुकुमालस्स अणगारस्स साहिज्जे दिरणे ॥८३॥

अर्थ—तव भगवान् अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव से कहा हे कृष्ण ! तुम उस पुरुष पर द्वेष मत करो । हे कृष्ण ! उग पुरुष ने तो गजमुकुमार अन्गार को सहायता दी है ॥८३॥

मूल—कहं णं भंते ! से पुरिमं गयसुकुमालस्स साहिज्जे दिरणे ? तए णं से अरहा अरिद्धनेमी कहं वासुदेवं एवं वयासी-से नूनं कएहा ! तुमं मम पायवंदए हव्वमागच्छमाणे वारवईए णयरीए एणं पुरिमं पाममि जाव अणुपवेसिए जहा णं कएहा ! तुमं तस्स पुरिसस्स साहिज्जे दिरणे, एवमेव कएहा ! तेणं पुरिसेणं गयसुकुमालस्स अणगारस्स अणेगभवसयसहस्ससंचियं कम्मं उदीरमाणेणं बहुक्कम्मणिज्जरत्थं साहिज्जे दिरणे ॥८४॥

अर्थ—कृष्ण वासुदेव ने कहा—भगवन् ! उस पुरुष ने गजमुकुमार को किस प्रकार सहायता दी है ?

तव अहंन्त अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव से कहा—हे कृष्ण ! तुम मेरे चरण बन्दन के लिए आ रहे थे तब तुमने अरिहा नगरी में एक पुरुष को देखा था, यावत् अनुकम्पा करके (इंट उठाकर) उसकी सहायता की थी । तो जिस पत्तार टूट्ठा ! तुमने उग पुरुष ही सहायता की थी, उमी प्रकार हे कृष्ण ! उस पुरुष ने गजमुकुमार मुनि के कई हजार भवों में नानि कर्मों ही उदीरणा करके, बहुत कर्मों की निर्जरा के लिए सहायता दी है ॥८४॥

मूल—तए णं से कएहे वासुदेवे अरहं अरिद्धनेमिं एवं वयासी-से णं भंते ! पुरिसे मए कहं जाणियन्वे ? ॥८५॥

अर्थ—तव कृष्ण वासुदेव ने अहन्त अरिष्टनेमि से कहा—भगवन् ! उस पुरुष को मैं कैसे पहिचानूँ ? ॥८५॥

मूल—तए णं अरहा अरिष्टनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—जे णं करहा ! तुमं वारवईए ण्यरीए अणुपविसमाणं पासित्ता टियए चैव ठिइभेएणं कालं करिस्सइ तएणं तुमं जाणेज्जासि एस णं से पुरिसे । ८६॥

अर्थ—तव अहन्त अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव से कहा—हे कृष्ण ! यहाँ से लौटते हुए द्वारिका नगरी में प्रवेश करते समय, तुम्हें देखते ही जो पुरुष एक जाएगा और वही भयभीत होकर स्थिति का भेद होने पर काल पूर्ण करेगा, उसी को तुम जान लेना कि वह पुरुष यही है—जिसने गजसुकुमार को सहायता दी है ॥८६॥

मूल—तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिष्टनेमि वंदइ नमसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव अभिसेयं हत्थिरयणं तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हत्थि दुरुहित्ता जेणव वारवई ण्यरी, जेणेव सए णिहे तेणेव पदारेत्थ गमणाए । ८७॥

अर्थ—तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने अरिहन्त अरिष्टनेमि को वन्दन-नमस्कार किया । वन्दना-नमस्कार करके जहाँ अपना अभिषेक-प्रधान हस्तीरत्न था, वहाँ पहुँचे और उस पर आरूढ़ हुए । फिर जहाँ द्वारिका नगरी और जहाँ स्वयं का घर था, वहाँ जाने के लिए रवाना हुए ॥८७॥

मूल—तए णं तस्स सोमिलस्स माहणस्स कल्लं जात्र जलंते अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव ससु-
प्पन्ने—एवं खलु कण्हे वासुदेवे अरहं अरिष्टनेमिं पायवंदए निग्गए तं नायमेयं अरहया, विण्णायमेयं अरहया,
सुयमेयं अरहया सिद्धमेयं अरहया भविस्सइ कण्हस्स वासुदेवस्स, तं न नज्जइ णं कण्हे वासुदेवे ममं केण वि

कुमारगुं मारिस्सइ ति कट्टु भीए सयाओ गिइओ पडिण्णिखमइ, कण्हस्स वासुदेवस्स वारवइं नयरिं अणुपवि
समाणस्स पुरओ सपक्खि सपडिदिसिं हव्वमाणए १'८८॥

अर्थ—तब उन सोमिल ब्राह्मण को प्रातःकाल होने पर यावत् सूर्य के जाज्वल्यमान होने पर इस प्रकार का अध्य-
वगाय यावत् उतन्न हुआ—निज्वय ही कृष्ण वासुदेव अरिहन्त अरिष्टनेमि भगवान् के चरणों की वन्दना के लिए निकले है,
अताव् उन्हे (मेरा दुःकृत्य) अरिहन्त भगवान् से ज्ञात हो जाएगा, विशेष रूप से ज्ञात हो जाएगा, वे उसे सुन लेंगे; और
निज्वय कर नेंगे तब कृष्ण वासुदेव न जाने किस कुमृत्यु से मुझे मारेंगे ! इस प्रकार विचार करके सोमिल भयभीत हुआ
और अपने घर से निकल पड़ा और द्वारिका नगरी में प्रवेश करते हुए कृष्ण वासुदेव के ठीक सामने, उसी दिशा में आ
पहुँचा ॥८८॥

मूल—तए णं से सोमिले माहणे कण्हं वासुदेवं सहसा पासित्ता भीए, ठिए चेव ठिइभेएणं कालं
कंडेइ, धग्गित्तंसि सव्वंगेहिं धसत्ति संनिवडिए ॥८९॥

अर्थ—तत्पश्चात् वह सोमिल ब्राह्मण कृष्ण वासुदेव को सहसा देख कर भयभीत हो उठा और खड़ा-खड़ा ही
स्त्रियनिभेद हो जाने में मर गया । वह सर्वांग से भूतल पर बडाम से गिर पड़ा ॥८९॥

मूल—तए णं से कणहे वासुदेवे सोमिलं माहणं पासइ, पासित्ता एव वयासी-एस णं भो देवाणु-
प्पिया ! से सोमिले माहणे अप्पत्थियपत्थिए जाव परिवज्जिए जेष ममं सहोयरे कणीयसे भायरे गयसुकुमाले
अणगारं अकाले चैव जीवियाओ ववरोविए, ति कट्टु सोमिल माहणं पाणेहिं कट्टुवेइ, कट्टुवित्ता तं भूमिं
पाण्णिणं अब्भोक्खावेइ, अब्भोक्खावित्ता जेणव सए गिहे तेणेव उवागए, सयं गिहं अणुपविइं ॥९०॥

अर्थ—तव कृष्ण वासुदेव ने सोमिल ब्राह्मण को देख कर कहा—अहो देवानुप्रिय ! यही वह सोमिल ब्राह्मण है अप्रार्थित का प्रार्थी यावत् लज्जा से परिवर्जित ! जिसने मेरे सहोदर लघु भ्राता गजसुकुमार अनगार को असमय मे ही मार डाला ! इस प्रकार कह कर सोमिल ब्राह्मण (के शव) को चांडालो से फिकवा दिया और उस भूमि को पानी से साफ करवाया । फिर अपने घर की ओर आए और घर में प्रविष्ट हुए ॥६०॥

मूल—एवं खलु नंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपदेणं अंतगडदसाणं तरुचस्स वग्गस्स अयमंडे पणत्ते ॥६१॥

अट्टमं अलभयणं समत्तं

अर्थ—श्रीसुधर्मा स्वामी कहते हैं—हे जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर यावत् निर्वाणप्राप्त ने अत्तकृद्दशा के तीसरे वर्ग का यह अर्थ कहा है ॥६१॥

आठवां अध्यायन समाप्त



तृतीय वर्ग

नवम् अध्ययन

मूल—नवमस उक्त्वेवञ्चो । एवं खलु जंबू ! तेषां कालेणं तेषा समएणं वारवईए नयरीए जहा पठमए जाय विहरइ ॥१॥

अर्थ—नीचे अध्ययन का उपोद्घात पूर्ववत् समझ लेना चाहिए । श्रीसुवर्मा स्वामी ने कहा—हे जम्बू ! उस काल जोर उन समय में द्वारिका नामक नगरी थी । शेष सब वर्णन प्रथम गीतम कुमार संबंधी कथन के अनुसार समझ लेना चाहिए, यावत् भगवान् नेमिनाथ पवारे और विचरने लगे ॥१॥

मूल— तस्य एं वारवईए णयरीए बलदेवे नामं राया होत्था, वएणञ्चो ॥२॥

अर्थ—द्वारिका नगरी में बलदेव नामक राजा थे, राजा का वर्णन यहाँ समझ लेना चाहिए ॥२॥

मूल— तस्म ए बलदेवस्स रण्णो धारिणी नामं देवी होत्था, वएणञ्चो ॥३॥

अर्थ—उन बलदेव राजा की धारिणी नामक रानी थी । यहाँ रानी का वर्णन कह लेना चाहिए ॥३॥

मूल— तए णं सा धारिणी सीहं सुमिणे जहा गोयमे, णवरं सुमुहकुमारं, पण्णासं कण्णाओ, पन्ना-
सदाओ, चोदस पुब्बाइं अहिज्जइ. वीसं वासाइं परियाओ, सेसं तं चेव जाव सेत्तुं जे सिद्धे । ४ ।

धारिणी रानी ने स्वप्न में सिंह देखा । सब वर्णन गीतम कुमार के समान समझना चाहिए, विशेषता केवल यही है कि कुमार का नाम सुमुख रखा गया । पचास कन्याओं के साथ उसका विवाह हुआ । पचास दात दी । दीक्षा अगीकार करके चौदह पूर्वों का ज्ञान प्राप्त किया । बीस वर्ष दीक्षा पाली । शेष पूर्ववत् यावत् शत्रुञ्जय पर्वत पर सिद्ध हुए ॥४॥

मूल— निक्खेवओ— एवं दुम्मुहे विं कूवदारए वि, दोण्ह वि बलदेवधारिणीसुया ॥५॥

अर्थ— निक्षेप— इसी प्रकार दुमुख और हृपदारक कुमारों का कथन समझना चाहिए । यह दोनों भी बलदेव और धारिणी के पुत्र थे ॥५॥

मूल— दारए वि एवं चेव, णवरं वासुदेवधारिणीसुए ॥६॥

अर्थ— दारुक कुमार का वृत्तान्त भी ऐसा ही समझना, विशेषता केवल यह है कि वह वासुदेव और धारिणी के पुत्र थे ॥६॥

मूल— एवं अणाधट्ठी वि वासुदेवधारिणीसुए तहेव ॥७॥

अर्थ— अनाधृष्टि कुमार का वृत्तान्त भी ऐसा ही है वह वासुदेव और धारिणी के पुत्र थे ॥७॥

मूल— एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव सपत्ते ण अट्टमस अंतगडदसाणं तच्चस्स वग्गस्स
तेरसमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पएणत्ते ॥८॥

इति तच्चस्म वगस्म तेरसमं अङ्कयणं समत्तं ।

अर्थ—हं जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर यावत् निर्वाणप्राप्त ने आठवे अंग अत्तकृद्दशा के तीसरे वर्ग के तेरह्वे अध्ययन हा वह अर्थ कहा है ॥८॥

तृतीय वर्ग का तेरहवां अध्ययन समाप्त

चतुर्थ वर्ग

मूल—जड् णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं तच्चस्म वगस्म तेरस अङ्कयणा पन्नता, चउत्थस्स वगस्म अंतगडदमाणं समणेणं जाव संपत्तेणं कति अङ्कयणा पएणत्ता ? ॥९॥

अर्थ—जम्बू न्वामी प्रश्न करते हैं—भगवान् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर यावत् निर्वाणप्राप्त ने अत्तगडदसा अंग १ तीसरे वर्ग के तेरह्वे अध्ययन कहे है तो चौथे वर्ग के श्रमण भगवान् ने कितने अध्ययन कहे है ? ॥९॥

मूल—एवं सलु वंत्तु ! समणेण जाव संपत्तेणं चउत्थस्स वगस्म दस अङ्कयणा पएणत्ता, तंजहा—

जालि मयालि उवयालि, पुरिससेणे य वारिसेणे य ।
पज्जुत्त संव अनिरुद्धे सच्चनेमी य दडनमी ॥९॥

अर्थ—श्रीसुधर्मा स्वामी ने उत्तर दिया—हे जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर यावत् निर्वाणप्राप्त ने चौथे वर्ग के दस अध्ययन कहे है । यथा—(१) जाली कुमार का (२) मयाली कुमार का (३) उवयाली कुमार का (४) पुरुषसेण-कुमार का (५) वारिषेण कुमार का (६) प्रद्युम्न कुमार का (७) शाम्बकुमार का (८) अनिरुद्ध कुमार का (९) सत्यनेमि-कुमार (१०) दृढनेमि कुमार का ॥२॥

मूल—जइ णं भंते ! समणेषु जाव संपत्तेशं चउत्थस्स वर्णस्स दम अउक्खयणा पणत्ता, पढमस्स अउक्खयणस्स के अट्ट पणत्ते ? ॥३॥

अर्थ—भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर यावत् निर्वाणप्राप्त ने चौथे वर्ग के दस अध्ययन कहे है तो प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ? ॥३॥

मूल—एवं खलु जंबू ! तेणं कालेण तेणं समएण वारवई णामं णयरी होत्था । जहा पढमे जाव करहे वासुदेवे आहेवच्चं जाव विहरइ । ४॥

अर्थ—इस प्रकार हे जम्बू ! उस काल और उस समय मे द्वारिका नामक नगरी थी । उसका वर्णन प्रथम गौतम कुमार के अध्ययन मे किया गया है, वही यहाँ जानना चाहिए, यावत् कृष्ण वासुदेव उसका शासन कर रहे थे ॥४॥

मूल—तत्थ णं वारवईए णयरीए वसुदेवे राथा, धारिणी देवी, वणश्रो । जहा गोयमो शवरं जालिक्खमारे, पण्णोसाओ दाओ, वारसंगी, सोलस वासाइं परियाओ, सेपं जहा गोयमस्स जाव सेत्तुजे सिद्धे । ५॥

अर्थ—द्वारिका नगरी मे वसुदेव नामक राजा थे । उनकी रानी का नाम धारिणी था, इत्यादि वर्णन पूर्ववत्

ममना । शरिणी रानी के उदर से जाली कुमार का जन्म हुआ । युवावस्था होने पर पचास कन्याओं के साथ उसका विवाह हुआ । पचान दत्त दी । भगवान् का उद्देश्य श्रवण करने पर वैराग्य उत्पन्न हुआ । दीक्षा अंगीकार की । बारह श्रमों का अध्ययन किया । मोलह वर्ष तक श्रमणपर्याय गाली । शेष सब वर्णन गौतम कुमार के समान है यावत् शत्रुघ्न्य नैल मे गिद्धि प्राप्त की ॥१॥

मूल — एवं मयालि उदयालि पुरिसंसेणे य वारिसेणे य एवं पञ्जुन्ने वि चि, शवरं करहे पिया रुषिणी माता । एवं संवे वि शवरं जंवरई माता । एवं अणिरुद्धे वि, शवरं पञ्जुणे पिया वेद्वभी माया । एवं सञ्चनेमी वि, शवरं समुद्विजण् पिया सिवा माता । एवं दढनेमी वि, सवे एगगमा । चउत्थस्स वगस्स निक्खेवश्रो ॥६॥

अर्थ—जैसा जाली कुमार का वृत्तान्त कहा, वैसा ही मायाली उपयाली, पुरुषसेण, वारिसेण और प्रद्युम्न कुमारी का भी कहना चाहिए । विशेषता यह कि इन सबके पिता कृष्ण और माता रुक्मिणी थी । शाम्ब कुमार का वृत्तान्त भी ऐसा ही जानना, केवल उनकी माता का नाम जाम्बवती था । अनिरुद्ध कुमार का वृत्तान्त भी ऐसा ही है, केवल उनके पिता प्रद्युम्न थे और माता वेदवभी थी । मरुतेमि कुमार का वृत्तान्त भी ऐसा ही है, पर उनके पिता समुद्रविजय और उगटार पूर्ववत् ममना चाहिए ॥६॥

चतुर्थ वर्ग समाप्त

पञ्चम वर्ग

मूल—जइ एं भते ! समयेणं जाव संपत्तेणं चउत्थस्स वग्गस्स अयमट्ठे पत्तत्ते, पंचमस्स एणं भंते ! वग्गस्स अंतगडदसाणं समयेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पणत्ते ? ।।१।।

अर्थ—अहो भगवान् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर यावत् निर्वाणप्राप्त ने चौथे वर्ग का यह अर्थ कहा है, तो भगवत् ! उत श्रमण भगवान् यावत् निर्वाणप्राप्त ने अन्तकृद्दशा अग के पांचवे वर्ग का क्या अर्थ कहा है ? ।।१।।

मूल— एवं खलु जंबू ! समयेणं जाव संपत्तेणं पंचमस्स वग्गस्स दम अज्झयणा पणत्ता, तंजहा—

पउमावई य गोरी गंधारी, लव्वखणा सुसीमा य ।

जंबवइ सच्चभामा, रुप्पिणी मूलसिरी मूलदत्ता वि ॥२॥

अर्थ—हे जम्बू ! यावत् निर्वाणप्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने पांचवे वर्ग के दस अध्ययन कहे हैं । यथा—(१) पद्मावती रानी का (२) गौरी रानी का (३) गाधारी रानी का (४) लक्ष्मणा रानी का (५) सुसीमा रानी का (६) जम्बूवती रानी का (७) सत्यभामा रानी का (८) रुक्मिणी-रानी का यह आठ श्रीकृष्ण की आठ पटरानियाँ हैं, (९) मूलश्री रानी का (१०) मूलदत्ता रानी का ।।२।।

मूल—जइ एं भंते ! समरणेणं जात्र संपरोणं पंचमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पएणत्ता, पडमस्स एं भंते ! अज्झयणस्स के अइहे पएणत्तो ? ॥३॥

अर्थ—भगवन् ! श्रमण भगवान् महावीर यावत् निर्वाणप्राप्त ने यदि पंचम वर्ग के दस अध्ययन कहे हैं तो भगवन् ! प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ? ॥३॥

मूल—एव खलु जंत्र ! तेणं कालेणं तेणं समएणं वारवई णामं णयरी होत्था, जहा पडमे जाव कएहे वामुदेवे आहंवेच्चं जात्र विहरइ ॥४॥

अर्थ—हे जम्ह ! उन काल और उस समय मे द्वारिका नामक नगरी थी । उसका वर्णन प्रथम अध्ययन के समान ही जानना । यावत् कृष्ण वामुदेव उसका आधिपत्य कर रहे थे ॥४॥

मूल—तस्स एं कएहस्स वामुदेवस्स पडमावई नामं देवी होत्था, वएणत्तो ॥५॥

अर्थ—उन कृष्ण वामुदेव की पत्नीवती नामक रानी थी । यहां रानी का वर्णन समझ लेना चाहिए ॥५॥

मूल—तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिद्धनेमी जात्र समोसडे जात्र विहरइ ॥६॥

अर्थ—उन काल और उन समय मे अरिहत्त अरिष्टनेमि भगवान् पवारो यावत् विचरने लगे ॥६॥

मूल—कएहे निग्गए जात्र पञ्जुवासइ ॥७॥

अर्थ—कृष्ण वामुदेव और जनसमूह भगवान् को बन्दना करने के लिए निकले यावत् पर्युपासना करने लगे ॥७॥

मूल—तए एं सा पडमावई देवी इमीसे कहाए लद्धहा समाणो हहा जहा देवई जात्र पञ्जुवासइ ॥८॥

अर्थ—तब पद्मावती रानी को यह वृत्तान्त विदित हुआ । वह हर्षित हुई और जिस प्रकार देवकी रानी बंदना करने गई थी, उसी प्रकार पद्मावती रानी भी गई यावत् भगवान् की उपासना करने लगी ॥८॥

मूल—तए णं अरहा अरिहनेमी कएहस्स वासुदेवस्स पउसावईए देवीए जाव धम्मकहा । परिसा पडिगया ॥९ ।

अर्थ—तत्पश्चात् अहन्त अरिष्टनेमि भगवान् ने कृष्ण वासुदेव को और पद्मावती देवी को तथा उपस्थित परिषद् को धर्मकथा सुनाई । धर्मकथा सुनने के बाद परिषद् वापिस चली गई ॥९॥

मूल—तए णं कएहे वासुदेवे अरहं अरिहनेमि वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—इमीसे णं भंते ! वारवईए णयरीए दुवालसजोयणअयामाए णवजोयणवित्थिन्नाए जाव पच्चक्खं देवलोगभूयाए किंमूलए विणसे भविस्सइ ? ॥१०॥

अर्थ—तब कृष्ण वासुदेव ने अरिहन्त अरिष्टनेमि को वंदन-नमस्कार किया और फिर प्रश्न किया—‘भगवन् ! बारह योजन लम्बी, नौ योजन चौड़ी और साक्षात् देवलोक के समान इस द्वारिका नगरी का विनाश किस कारण से होगा ?’ ॥१०॥

मूल—‘कण्हा !’ इ अरहा अरिहनेमी कएहं वासुदेवं एवं वयासी—एवं खलु कएहा ! इमीसे वारवईए नयरीए नवजोयणविच्छिन्नाए जाव देवलोगभूयाए सुरग्गिदीवायणमूलाए विणसे भविस्सइ ॥११॥

अर्थ—‘कृष्ण’ इस प्रकार सबोधन करके अहंत् अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव से कहा—इस प्रकार हे कृष्ण ! नौ योजन वीस्तीर्ण यावत् देवलोक के सदृश इस द्वारिका नगरी का विनाश सुरा (मदिरा), अग्नि और द्वीपायन ऋषि के निमित्त से होगा ॥११॥

मूल—तए गं कण्हस्स वासुदेवस्स अरहत्थो अरिद्धनेमिस्स अंतिए एयभट्ठं सोत्ता णिसम्म अयमेया-
 ह्वे अज्झक्खिण्णं जाव समुप्पन्ने-थत्ता णं ते जालि-मयालि-उवयालि-पुरिससेण-वारिसेण-पज्जुण्ण संव-
 अनिरुद्ध-इट्ठनेमि-सच्चनेमि-पभिइत्थो कुमारा जे णं चिच्चा हिरणं जाव परिभाएत्ता अरहत्थो अरिद्धनेमिस्स
 अंतियं मुंडा जाव पव्वइया; अहएणं अश्रणे अकयपुएणे रज्जे य जाव अंतेउरे य माणुस्सएसु य कामभोगेसु
 मुच्चिए ष, नो सत्ताएमि अरहत्थो अरिद्धनेमिस्स जाव पव्वइत्तए । १२-१३॥

अर्थ—अहंत् अरिष्टनेमि के मुत्तारविन्द से यह बात सुन कर और उसे अववारण करके कृष्ण वासुदेव के मन में
 उग प्रहार का विचार उत्पन्न हुआ-अहा, जाली मयाली, उपयाली, पुरुपपेण, वारिसेण, प्रद्युम्न, शाम्ब, अनिरुद्ध,
 इट्ठनेमि और मत्यनेमि वगैरह कुमार धन्य हैं जो हिरण्य (चादी-सोना आदि) का त्याग करके यावत् उसका विभाग
 करने अरिहन्त अरिष्टनेमि भगवान् के निकट दीक्षित हुए हैं। मैं अबन्य हू, मैंने पुत्र का सचय नहीं किया है। मैं राज्य
 में यावत् अन्तःपुर में एव मनुष्य नवधी कामभोगों में मूर्च्छित हूँ और अहंन्त अरिष्टनेमि के निकट दीक्षा अंगीकार करने में
 नग्नं नहीं हो पाता है ॥१२-१३॥

मूल—अएहाइ अरहा अरिद्धनेमी कएहं वासुदेवं एवं वयासी-‘से नूणं कणहे ! तव अयं अज्झक्खिण्ण
 जाव समुप्पन्ने-थत्ता गं ते जाली जाव पव्वइत्तए, से एएण वण्हा ! अइडे समइडे ?,
 ‘हंता, अत्थि’ ॥१४॥

अर्थ—‘तव अज्झक्खिण्ण’ उग प्रहार सवोयत्न करते अहंन्त अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव से कहा-‘कृष्ण ! तुम्हें, ऐसा
 विचार उत्पन्न क्यों है कि ये जानी कुमार आदि धन्य हैं यावत् मैं दीक्षा ग्रहण करने में असमर्थ हूँ। हे कृष्ण ! यह बात
 क्यों है ?

श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया—हाँ भगवन् ! सत्य है, मुझे ऐसा विचार आया है ॥१४॥

मूल—तं नो खलु वरहा ! तं एयं भूयं वा भव्वं वा भविस्सइ वा जन्नं वासुदेवा चइत्ता हिरण्यं जाव पव्वइस्संति ॥१५॥

अर्थ—तब भगवान् ने कहा—कृष्ण ! ऐसा कभी हुआ नहीं, होता नहीं और होगा भी नहीं कि वासुदेव हिरण्य आदि का त्याग करके दीक्षा ग्रहण करे ॥१५॥

मूल—से केण्डेणं भंते ! एवं बुच्चइ न एवं भूयं जाव पव्वइस्संति ?

अर्थ—कृष्णजी ने प्रश्न किया—भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा है कि ऐसा हुआ नहीं, होता नहीं, होगा भी नहीं कि वासुदेव दीक्षा धारण करे ?

मूल—कण्हइ अरहा अरिठ्ठनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी-एवं खलु कण्हा ! सव्वे वि य णं वासुदेवा पुव्वभवे नियाणकडा, से एएणं अट्टेणं कण्हा ! एवं बुच्चइ न एयं भूयं जाव पव्वइस्संति ॥१६॥

अर्थ—'कृष्ण' इस प्रकार सबोधन करके अर्हत् अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव से कहा—हे कृष्ण ! सभी वासुदेव पूर्व भव मे निदान (नियाणा) करते हैं, इस कारण ऐसा कहा है कि ऐसा हुआ नहीं, होता नहीं, होगा नहीं कि वासुदेव दीक्षा धारण करे ॥१६॥

मूल—तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिठ्ठनेमिं एवं वयासी-अहं णं भंते ! इओ कालमासे कालं विच्चि कहिं गमिस्सामि ? कहिं उववज्जिस्सामि ? ॥१७॥

अर्थ—नदाञ्चान् कृष्ण वानुदेव ने अहंत् अरिष्टनेमि से प्रश्न किया—भगवन् ! मैं काल के अवसर पर काल करके यती ने तौ जाऊंगा ? कहाँ उल्लास होऊंगा ? ॥१७॥

मूल—तए गं अरहा अरिष्टनेमी करहं वासुदेवं एवं वयासी—एवं खलु कएश ! तुमं चारवईए नय-
रीए मुरगिद्रीवायणकोत्रनिहड्डुए अम्मपिड्निनियगविप्पहूणे रामेण बलदेवेण सद्धि दाहिणवेयालि अभिमुहे जुहि-
डिलपामोक्खवाणं पंचएह पंडवाणं पंडुरायपुत्ताणं पासं पंडुमहुरं संपत्थिए कोसववणकाणणे नगोहवरपायवम्स
अहं पुटविसिन्नापट्टए पीयवत्थपच्छाइयमरीरे जराकुमारेणं तिव्वेणं कोदंडविप्पमुक्केणं इत्थुणा वामे पाए विद्धे
ममार्गे कालमासे कालं किञ्चा तच्चाए बालुयप्पभाए पुठवीए उज्जलिए नए नेरइयत्ताए उववज्जिहिसि । १८।

अर्थ—नव अहंत अरिष्टनेमि ने कृष्ण वानुदेव से कहा—हे कृष्ण ! सुरा, अग्नि और द्वीपायन ऋषि के कोप से शक्ति नगरी के भस्म हो जाने पर तुम माता, पिता एवं अन्य स्वजनो से विछुड कर केवल राम बलदेव के साथ, रत्नगो नमुद्र के लिनारे को ओर, गण्डु राजा के पुत्र युधिष्ठिर आदि पांच पाण्डवों के पास पाण्डु-मथुरा को जाने के लिए खाना हीओगे । मार्ग में लोगात्र वृद्ध के कानन में, एक उत्तम वट वृक्ष के नीचे, पृथ्वीशिलापट्टक पर पीत वस्त्र से सुन्दारा गरीर आच्छादित होगा । उस समय जराहुमार अपने धनुष से एक तीक्ष्ण बाण छोडेगा । वह तुम्हारे बाएँ पैर में स्थि जाएगा । तब कालमास में ताल करके तुम तीसरी बालुकाप्रभा पृथ्वी में उज्वलित नामक नरक में नारक रूप में जन्म लोगे ॥१८॥

मूल—तए गं से करहं वासुदेवं अरहंओ अरिष्टनेमिस्म अंतिए एयमहं सोब्बा निसम्म ओहय वाव
भियायः ॥१९॥

अर्थ—नेमिनाथ भगवान् के मुखारविन्द से अपना भविष्य सुन कर कृष्ण वासुदेव चिन्तित हो गये—आर्त्तध्यान

ध्याने लगे ॥१६॥

मूल—कण्हाइ ! अरहा अरिदुनेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी मा णं तुम देवाणुप्पिया ! ओइय जाव भियाहि, एवं खलु तुमं देवाणुप्पिया ! तच्चाओ पुढवीओ उज्जलियाओ नरयाओ अणंतरं उव्वट्टिता इहेव जंबुद्वीवे दीवे भारहे वासे आगमेस्साए उम्मप्पिणीए पुंहेसु जणवएसु मयदुवारे णयरे वारसमे अममे नामं अरहा भविस्समसि । तत्थ णं तुमं बहुइं वामाडं केवलपरियाणं पाउणित्ता सिद्धिस्सहिस्सि । २०॥

अर्थ—'कृष्ण !' इस प्रकार सबोधन करके अहंत्वं अरिदुनेमि ने कृष्ण वासुदेव से कहा—हे देवानुप्रिय ! तुम चिन्तित मत होओ, आर्त्तध्यान मत करो । देवानुप्रिय ! तुम तीसरी पृथ्वी से, उज्ज्वलित नरक से निकल कर सीधे इसी जम्बूद्वीप में, भरतक्षेत्र में, आगामी उत्सर्पिणी काल में, पुंइ नामक जनपद में, शतद्वार नामक नगर में बारहवें अमम नामक तीर्थकर होओगे । उस पर्याय में तुम बहुत वर्षों तक केवली अवस्था में रहकर सिद्धि प्राप्त करोगे ॥२०॥

मूल—तए णं कणहे वासुदेवे अरहओ अरिदुनेमिस्स अंतिए एयमडं सोच्चा णिसम्म हड्डुड्ढे अफ्फोडित्ता वग्गइ, वग्गइत्ता तिवइं छिदइ, छिदित्ता सीहनार्यं करेइ, करित्ता अरह अरिदुनेमि वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता तमेव अभिसेक्कं हत्थिरयणं दुरूहइ, दुरूहित्ता जेणेव बाहिरिया उव्वट्टाणसाला जेणेव सए सोहासणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहे निसीयइ, निमीइत्ता कोडुं-वियपुरिसे सदावेइ, सदावेत्ता एवं वयासी-गच्छह णं तुमे देवाणुप्पिया ! वारवईए नयीए सिंघाडग जाव घोसेमाणे एवं वदह-एवं खलु देवाणुप्पिया ! वारवईए णयरीए नवजोयण जाव देवलोगभूयाए सुरग्गिदीवा-

यगमूलए विगासे भविस्सइ, तं जे र्णं देवाणुपिपया ! इच्छंति चारवईए नयरीए राया वा लुवगया वा ईसर
तलवर मांडविय-कोडुंविय-इत्थ-सेट्ठी वा देवी वा कुमारी वा अग्रहथो अग्निदुर्भिसस अंतिए मुंडे
जाव पचवइत्तए तं गं कएहे वासुदेवे तिसल्लइ, पच्छातुमस वि य से अहापविचं विचं अणुजाणइ, महया
इड्डीमक्कार समुदणं य से निक्खमण करेइ दोच्चं पि तच्च पि घोसणय घोसेह, घोसइत्ता मयं एयमाणत्तियं
पच्चपिपगह ॥२॥

अर्थ—नत्पञ्चात् कृष्ण वासुदेव, अहंस्त अरिष्टनेमि के मुख से इस अर्थ को मुन कर तथा अवधारण करके हर्षित
और गन्गुट हुए । इन्होंने हर्ष से ताल ठोकी, और मल्ल की तरह तीन पैर पीछे हट कर खड़े हो गए । सिहनाद किया ।
फिर भगवान् अरिष्टनेमि को बन्दन-नमस्कार किया । तत्पञ्चात् अपने प्रधान हाथी पर आरूढ होकर जहाँ द्वारिका नगरी
की गली अपना भवन था, उधर आये । प्रधान हाथी से उतर कर जहाँ बाह्य सभाभवन और अपना सिंहासन था, उधर
गये । यहाँ जाकर पूर्व दिशा में मुख करके अपने उत्तम सिंहास पर आसीन हुए । फिर कोटुम्बिक पुरुषो को बुलाकर
बोले—

हे देवानुप्रियो ! तुम जाओ और द्वारिका नगरी के शृङ्गाटक (तिकोने) आदि मार्गों में यह घोषणा करो कि—हे
देवानुप्रियो ! नौ गोजन चौडी, चारहूँ योजन लम्बी एव माक्षात् देवलोक के समान इस द्वारिका नगरी का मुरा, अग्नि
और भीमान के निमित्त से विनाश होने वाला है, अतएव हे देवानुप्रियो ! द्वारिका नगरी का जो भी कोई राजा,
सुभार, इन्द्र, नन्वर, माटविक, कोटुम्बिक, दस्य, रानी, कुमार या कुमारी अहंस्त अरिष्टनेमि के समीप मुंडित
एवं दीक्षित होना चाटना दो, उन्हें कृष्ण वासुदेव उनके लिए आज्ञा देते हैं । उनके पीछे जो कुटुम्ब रहेगा, उसकी निन्ता-
वाचनभाव कृष्ण तन्ने और दीक्षा गृहण करने वाले का दीक्षा-उत्सव खूब ठाठ के साथ करेंगे । दो बार तीन बार गह
घोषणा करो और मेरी आज्ञा मुझे वापिस लीटाओ ॥२॥

मूल—तए णं कोडुंत्रिय जाव पच्चप्पिणंति । २२ ।

अर्थ—तत्पश्चात् वे कौटुम्बिक पुरुष इस प्रकार की घोषणा करके यावत् आज्ञा वापिस लीटाते है, अर्थात् आज्ञा-
नुरार कार्य करने की सूचना करते हैं ॥२२॥

मूल—तए णं सा पउमावई देवी अरहओ अरिड्ढनेमिस्स अतिए धम्मं सोच्चा निमम्म हड्डतुड्ड
जाव हियया अरहं अरिड्ढनेमि वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमसित्ता एवं वयासी-सइहामि णं भंते ! णिग्गंथं
पावयणं से जहेयं तुब्भे वदह, जं नवरं देवाणुप्पिया ! कण्हं वासुदेवं आपुच्छामि, तए णं अहं देवाणुप्पियाणं
अंतिए मुंडा जाव पव्वयामि ।

‘अहासुहं देवाणुप्पिए ! मा पडिंबंधं करेह’ ॥२३॥

अर्थ—तब पद्मावती देवी अरिहन्त अरिष्टनेमि भगवान् के निकट धर्म श्रवण करके और उसे हृदयंगम करके हर्षित
एव सन्तुष्ट हुई । उसका हृदय विकसित हो गया । उसने अरिहन्त अरिष्टनेमि को वन्दना-नमस्कार करके कहा-भगवन् !
मैं निरर्थप्रवचन पर श्रद्धा करती हूँ । आपने जो कुछ फर्माया है, वह सब यथार्थ है । हे देवानुप्रिय ! केवल मैं कृष्ण वासुदेव
से पूछ लेती हूँ और फिर देवानुप्रिय के निकट दीक्षा अगीकार करूँगी ।

तव भगवान् ने फर्माया-देवानुप्रिये ! जिसमें तुम्हे सुख उपजे, वैसा करो । उसमें ढील न करो ॥२३॥

मूल—तए णं सा पउमावई देवी धम्मियं जाणप्पवरं दुरुहइ, दुरुहित्ता जेणेव वारवई नयरी, जेणेव
सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छता धम्मियाओ जाणप्पवराओ पच्चोरुहइ, जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव
उवागच्छइ, उवागच्छता कणयल जाव कड्डु कण्हं वासुदेवं एव वयासी-इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! तुब्भेहिं

अथ भगुणाया समानी अग्नेमिस्स अति ए मुं डा जात्र पवइउं । 'अद्रासुहं देवाणुप्पिए ।'

अर्थ—तन्मज्जान् पचावनी देवी धार्मिक (वर्मकार्य) में प्रयुक्त होने वाले) रथ पर आरूढ होकर जिधर नगरी और जिधर अग्ना भवन था, उधर चली और वहा पहुँच कर धार्मिक रथ से नीचे उतरी । फिर कृष्ण वामुदेव ने पान जाकर और हाथ जोड कर यावत् मस्तक पर अजलि करके कृष्ण वामुदेव से बोली—हे देवानुप्रिय ! आपकी अनुमति पाकर मैं अहन् अरिष्टनेमि भगवान् के निकट मु डित एव दीक्षित होना चाहती हूँ ।

अग वामुदेव ने कहा—'देवानुप्रिये ! जिसमें तुम्हें सुख उपजे, वैसा करो' ॥२४॥

मूल—तए ग मं करेहे वामुदेवं कोडुं विय पुरिसे सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुपिया ! पउमावईए देवीए महत्थ निक्खमणामिसयं उवइवेइ, उवइवित्ता एयं आणत्तियं पच्चप्पियह । एए ग ने कोडुं विययुग्गिमा जात्र पच्चप्पियंति ॥२५॥

अर्थ—तब अग वामुदेव ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुला कर कहा—देवानुप्रियो ! शीघ्र ही पचावती देवी के महान् धर्म याने—यहून् द्यय याने—दीक्षाभियेक की तैयारी करो और मेरी आज्ञा वापिस लीटाओ । तब कौटुम्बिक पुरुषों ने दीक्षाभियेक की तैयारी करके यावत् आज्ञा वापिस लीटाई ॥२५॥

मूल—तए ग मं करेहे वामुदेवे पउमावई देवि पइयंसि दुरूहइ, दुरूहिता अइसएणं सोवणकलस जात्र निमत्तपगामिमेएणं अभिसिंचइ, अभिसिंचित्ता सव्वालंकारविभूमियं करेइ, करित्ता पुरिससहस्सवाहिणि गिनिय दुरूहावेइ, दुरूहावेत्ता चारवईए गयरीए मज्झं मज्झेणं निगच्छइ, निगच्छित्ता जेणंवे रेवए पव्वए, जेणं मत्तस्संवणे उज्जाणे तेणंवे उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सिवियं ठवेइ, ठवेत्ता पउमावई देवी सीयाओ पच्चो—

रुद्रे, पञ्चोरुहिता जेषेव अरहा अरिदुनेमि तेषव उवागच्छता अरहं अरिदुनेमि तिवसुतो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करिचा वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी-एस णं भंते ! मम अग्गमहिंसी पउमावई नामं देवी मम इट्ठा कंता पिया मणुएणा मणामा अभिरामा जाव किमंग पुण पासणयाए, तएणं अह देवाणुप्पिया ! सिस्सिणीभिक्षुं दलयामि; पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया ! सिस्सिणीभिक्षुं । 'अहासुहं' । २६।

अर्थ—तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने पद्मावती देवी को पाट पर बिठलाया और एक सौ आठ सोने के कलशों से यावत् निष्क्रमण-अभिवेक से अभिषेक करके सर्व अलंकारों से विभूषित किया । फिर हजार पुरुषों द्वारा उठाई जाने वाली पालकी से बिठलाया । द्वारिका नगरी के बीचोंबीच से निकल कर जहाँ रैवतक (गिरनार) पर्वत था और जहाँ सहस्राश्रवन नामक उद्यान था, वहाँ पहुँचे । वहाँ पहुँचने पर पालकी रोकी गई और पद्मावती देवी उससे नीचे उतरी । जहाँ भगवान् अरिष्टनेमि थे, वहाँ पहुँच कर और तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार किया । वन्दन-नमस्कार के पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने निवेदन किया-भगवन् ! यह मेरी पटरानी पद्मावती देवी है । यह मुझे इष्ट, प्रिय, मनोज्ञ, अतिशय मनोहर, अभिराम है । यावत् पुनः इसका दर्शन ही दुर्लभ है । ऐसी इस देवी को, हे देवानुप्रिय ! मैं शिष्यनीभिक्षा के रूप में आपको समर्पित करता हूँ । देवानुप्रिय मेरी यह शिष्यनीभिक्षा अंगीकार करे ।

तव भगवान् ने फर्माया-जैसे सुख हो, वही करो । उसमें ढील न करो ॥२६॥

मूल—तए णं सा पउमावई देवी उत्तरपुच्छिमं दिसिभागं अवक्कमइ, अवक्कमिचा सयमेव आभ-
रणालंकारं ओमुयइ, ओमुइत्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, करिचा जेषेव अरहा अरिदुनेमी तेषेव उवागच्छइ,
उवागच्छित्ता अरहं अरिदुनेमि वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी-आलिचे णं भंते ! जाव धम्म-
माइक्खित्तं ॥२७॥

अर्थ—तत्पञ्चान् पञ्चावती देवी उत्तरपूर्व दिशा-ईशान कोण में गई। सर्व अलकार अपने ही हाथ से उतारे। अपने ही हाथ ने पञ्चमुष्टिक लोच किया। लोच करने के बाद अर्हन्त अरिष्टनेमि के समीप पहुँची। वहाँ पहुँच कर भगवान् को वन्दना-नमस्कार किया और फिर कहा-भगवन् ! यह संसार जन्म जरा मरण आदि के दुःखों से जल रहा है, अतिशय जन रहा है। अतएव मैं आपकी शरण में आई हूँ। आप मुझे दीक्षा प्रदान करें और धर्म का उपदेश करें ॥२७॥

मूल—तए णं अरहा अरिद्धनेमी पउमावइं देविं सयमेव पव्वावेइ, पव्वावित्ता सयमेव मुं डावेइ,
गयमेव जन्निखणीए अज्जाए सिस्विणित्ताए दलयनि ॥२८॥

अर्थ—तत्र अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान् ने पञ्चावती देवी को स्वयमेव दीक्षा दी, स्वयमेव मुडित किया और स्वयमेव यज्ञिणी नामक आर्या को शिष्या के रूप में प्रदान किया ॥२८॥

मूल—तए णं सा जन्निखणी अज्जा पउमावइं देविं सयमेव पव्वावेइ, पव्वावेत्ता जाव संजमियव्वं ॥२९॥

अर्थ—तत्र यज्ञिणी आर्या ने पञ्चावती देवी को स्वयमेव प्रव्रजित की अर्थात् हितशिक्षा दी यावन् सयम की साधना करने उद्योगों से जीतना, आदि उपदेश दिया ॥२९॥

मूल—तए ण मा पउमावइं अज्जा जाया इरियाममिया जाव सुत्तं भयारिणी ॥३०॥

अर्थ—तत्र वह पञ्चावती आर्या हो गई, ईयमिमिति में युक्त यावन् गुप्त ब्रह्मचर्य को धारण करने वाली ॥३०॥

मूल—तए गं सा पउमारइं अज्जा जन्निखणीए अट्ठाए अंतिए सामाइयाइं एककारस अंगं
पत्तिज्जइ, यत्तिज्जसा वट्ठइं चउत्थ-च्छइ-हुम-दुम-दुवालसेहिं मासदुमासत्रलमणेहिं विविहेहिं तवोकम्ममेहिं
पत्थगणं भावेमाणा विहरइ ॥३१॥

अर्थ—तत्पश्चात् पद्मावती आर्या ने यक्षिणी आर्या के निकट सामायिक से प्रारम्भ करके ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। अध्ययन करके बहुत-से उपवास, बेला, चोला, तैला, पचोला, अर्ध मासखमण, मासखमण आदि विविध प्रकार के तपश्चरणों द्वारा अपनी आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगी ॥३१॥

मूल—तए चं सा पउमावई अज्जा बहुपडिपुनाइं वीसं वासाइं सामण्यपरियागं पाउखित्ता मासि-
याए संलेहणाए अप्पाणं भ्मांसेइ, भ्मांसित्ता सट्ठिं भत्ताऽं अणसणाए छेदेइ, छेदित्ता जस्सट्ठाए कीग्इ नग्गभावे
मुंडभावे जाव तमट्ठं आराहेइ चरिसुस्सासेहिं सिद्धा ॥३२॥

पंचमवर्गस्य पटमज्झयणं समत्तं ।

अर्थ—पद्मावती आर्या ने पूरे बीस वर्ष तक साधु-पर्याय का पालन किया, एक मास की सलेखना का सेवन किया, अनशन करके साठ भक्तों का छेदन किया और जिस प्रयोजन की सिद्धि के लिए नग्नभाव एवं मुंडभाव अंगीकार किया जाता है, उस प्रयोजन (मुक्ति) की आराधना की। अन्तिम श्वासोच्छ्वास में सिद्धि प्राप्त की ॥३२॥

पांचवें वर्ग का प्रथम अध्ययन समाप्त



द्वितीय अध्यायः

मूल—उक्त्वैवश्री वीथ्य अज्ज्जयणस्स । तेणं कालेणं तेणं समएणं चारवई णयरी, रेवयए पव्वए,
गंदगवणे उज्जाणे ॥१॥

अर्थ—दूगटे अज्जयन नी भूमिग समज्ज लेनी चाहिए । उस काल और उस समय मे द्वारिका नगरी थी । रैवतक
पर्वत या । नन्दगवन नामक उद्यान था ॥१॥

मूल—तत्थ गं चारवईए णयरीए कएहे वामुदेवे राया होत्था, तस्स एं कएहवासुदेवस्स गोरी देवी,
वग्गशो । २॥

अर्थ—उन द्वारिका नगरी मे कृष्ण वामुदेव राजा थे । कृष्ण वामुदेव की गौरी अन्नमहिषी थी, उनका वर्णन समस्त
वेदा चालिए ॥२॥

मूल—अरहा अरिद्धनेमी समोसडे ॥३॥

अर्थ—अर्हना अरिद्धनेमि भगवान् प्यारे ॥३॥

मूल—कएहे निग्गए, गोरी जहा पउमावई तथा णिग्गया, धम्मकहा, परिसा पडिग्गया कएहे वि । ४।

सुनी । परिपद् लौट गई और कृष्णजी भी वापिस लौट गये ॥४॥
 अर्थ—कृष्ण वासुदेव वंदना करने के लिए निकले । गौरी रानी भी पद्मावती रानी की तरह निकली । धर्मकथा

मूल—तए णं सा गोरी जहा पउमावई तहा निक्खुंत्ता जाव सिद्धा ॥५॥

अर्थ—तत्पश्चात् गौरी देवी ने पद्मावती की तरह दीक्षा अंगीकार की और उसी प्रकार ज्ञानोपार्जन करके,

तपश्चरण करके तथा सलेखना करके यावत् सिद्धि प्राप्त की ॥५॥

द्वितीय अध्ययन समाप्त

३-८ अध्ययन

मूल—एवं गंधारी, एवं लक्खणा, एवं सुसीमा, एवं जंघवती, सच्चभामा, रुष्पिणी, एवं अट्ट वि
 पउमावई—सरिसाओ 'अट्ट अज्झयणा समत्ता'

अर्थ—इसी प्रकार गांधारी, लक्ष्मणा, सुसीमा, जाम्बवती, सत्यभामा और रुक्मिणी नामक रानियों का वृत्तान्त जानना चाहिए । इन आठों का एक-सा पद्मावती के समान ही अधिकार है ।

आठ अध्ययन समाप्त

६-१० अध्ययन

मूल—उक्खेवओ य नवमस्स, तेणं कालेणं तेणं समएणं वारवई णयरी, रेययए पव्वए, नंदणवणे,

उज्जायणं, कण्ठे वामुदेवे राया ॥१॥

अर्थ—नौवें अव्ययन की भूमिका समझ लेना चाहिए, अर्थात् जहूँ स्वामी ने प्रश्न किया कि श्रमण भगवान् महा-धीर ने आठवें अव्ययन का यह अर्थ कहा है ? तो नौवें अव्ययन का क्या अर्थ कहा है, तब श्री सुवर्मा स्वामी ने उत्तर दिया—उस काल और उस समय में द्वारिका नामक नगरी थी । रैवतक पर्वत था । नन्दनवन नामक उद्यान था । कृष्ण वामुदेव राजा थे ॥१॥

मूल—तत्थ णं वारवईएण शयरीएण कणहस्स वामुदेवस्स पुत्तए णववतीए देवीए अत्तए संवे नामं कुमारे दोन्था, अद्दीगं० । तस्स गं संवस्स कुमारेस्स मूलसिरी नाम भारिया होत्था, वण्णञ्चो ॥२-३॥

अर्थ—द्वारिका नगरी में कृष्ण वामुदेव का पुत्र और जाम्बवती का आत्मज साम्ब कुमार था । वह परिपूर्ण अस्त्रियो वाना आदि विगेषणो में युक्त था । साम्ब की पत्नी का नाम मूलश्री था, उका वर्णन जान लेना चाहिए ॥२-३॥

मूल—अग्धा अग्दिनेमी समोसडे, कण्ठे शिग्गए, मूलमिरी वि शिग्गया, जहा पउमावई, नवरं देवाणुष्पिया । कण्ठं वामुदेवं आपुच्छामि, जाव सिद्धा । एव मूलदत्ता वि ॥४॥ दसमं अज्झयणं समत्तं । पंचमो वर्गो समत्तो

अर्थ—अग्दित्त अग्दिनेमि भगवान् का पदार्पण हुआ । कृष्णजी -वन्दना करने के लिए निकले । मूलश्री भी निकली । तमोरेण अय्य कर मूलश्री ने पचावती ही भाँति कृष्ण वामुदेव की आज्ञा लेकर दीक्षा ग्रहण करने की इच्छा रखी थी नग्नान्नात् आज्ञा लेकर दीक्षा ली थावत् मिद्धि प्राप्त की । ज्य्यादि वृत्तान्त पचावती के समान समझना चाहिए । मूलश्री का शिग्गार मूलश्री के नयान नमज्जा चाहिए ॥४॥

पँचवा वर्ग समाप्त

अथ वर्ग

मूल—जइ गं भंते ! छट्टस्स उक्खेवञ्चो; नशं सोलस अज्झयणा पणत्ता, तंजहा —

मंकई किंकमे चेव, सोग्गरपाणी य कासवे ।

खेमए धित्तिधरे चेव, केलासे हरिचंदणे । १॥

वारत्त-सुदंसणे, -पुण्णभइ सुमणभइ सुपइड्डे भंहे ।

अत्तिपुत्तो अ अलक्खे-अज्झयणाणं तु सोलसयं ॥२॥

अर्थ—भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर ने पाँचवे वर्ग का यह अर्थ कहा है तो छोटे वर्ग का क्या अर्थ कहा है ? ऐसा उत्क्षेप पूर्ववत् जानना; विशेष यह है कि छोटे वर्ग के सोलह अध्ययन कहे हैं । यथा—(१) मंकाई गाथापति (२) किंकम गाथापति (३) मुद्गारपाणि यक्ष (अर्जुन-माली) (४) काश्यप गाथापति (५) क्षेमक गाथापति (६) धृतिधर गाथापति (७) कैलाश गाथापति (८) हरिचदन गाथापति (९) वारत्त गाथा पति (१०) सुदर्शन गाथापति (११) पूर्णभद्र गाथापति (१२) सुमनभद्र गाथापति (१३) सुप्रतिष्ठ गाथापति (१४) मेघ गथापति (१५) अतिमुक्त कुमार और (१६) अलक्ष्य राजा यह सोलह अध्ययनों के नाम हैं ॥१-२॥

मूल—जड़ मोलम अज्झयणा पणत्ता, पढमस्स गं भंते ! अज्झयणस्स के अड्डे पणत्ते ?

अर्थ—यदि छड़े वगैरे के मोलमें अज्झयन कहे हे तो हे भगवन् ! प्रथम अज्झयन का क्या अर्थ कहा है ?

मूल—एवं खलु जम्भू ! तेणं कालेण तेणं समएणं रायगिहे खगरे, गुणसिलए चेइए, सेणिए राया । १।

अर्थ—हे जम्भू ! उन काल और समय में राजगृह नगर था । गुणसिलक नामक चैत्य था और श्रेणिक राजा था । १।

मूल—तत्थ गं मंकाई गामं गाहावई परिवमइ, अड्डे जाव अपरिभूए ॥२॥

अर्थ—उन राजगृह नगर में मंकाई नामक गाथापति रहता था । वह ऋद्धिमान् यावत् कभी किसी के द्वारा पराभूत होने कावा नहीं था ॥२॥

मूल—तेणं कालेणं तेणं समएणं भगवं महावीरे आइगरे जाव गुणसिलए जाव विहरइ । परिगा गिगगया ॥३॥

अर्थ—उन काल और उन समय में धर्मतीर्थ की आदि करने वाले श्रमण भगवान् महावीर पधारें यावत् गुणसिलक चैत्य में यावत् विहरने लगे । भगवान् की चरणवन्दना करने के लिए परिषद् निकली ॥३॥

मूल—तए गं से मंकाई गाहावई इसीसे क्खाए लद्धडे जहा पणत्तीए गंगदत्तो तहेव, इमो वि जेइपुणं इड्डे ठावित्ता, पुरिममइस्सवाहिणीए सीयाए निक्खंते जाव अणगारे जाए—इरियासमिए जाव गुत्त-वंभयामी । ४॥

अर्थ—तब मंकाई गाथापति भगवान् के आगमन का वृत्तान्त श्रवण कर हर्षित हुआ । यावत् भगवती मूत्र में वर्णित

गंगदत्त के समान बड़े पुत्र को कुटुम्ब में स्थापित करके, हजार पुरुषों द्वारा वहन करने योग्य पालकी में बैठ कर भगवान् के पास आए यावत् दीक्षा धारण की। वह ईर्यासमिति से युक्त एव गुप्त ब्रह्मचारी अनगार बने ॥४॥

मूल — तए णं से मंकाई अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहारूयाणं श्रेयाणं अंतिए सामा-
इयाइं एक्कारसंगाइं अहिज्जइ, सेसं जहा खंधयस्स । गुणरयणं तवोकम्मं, सोलस वासाइं परियाओ, तहेव विउले सिद्धे ॥५॥

अर्थ—तत्परचात् मकाई अनगार ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के तथारूप स्थविरो के निकट सामायिक से ले कर ग्यारह अगों तक का अध्ययन किया। शेष वृत्तान्त भगवती में कथित स्कधक मुनि के समान जानना। गुणरत्न-सवत्सर तप किया। सोलह वर्ष दीक्षा पाली और उसी प्रकार विपुलाचल से सिद्धि प्राप्त की ॥५॥

छट्टवग्गस्स पढमज्झयणं समरं ।

छठे वर्ग का प्रथम अध्ययन समाप्त

द्वितीय अध्ययन

मूल—दोच्चस्स उन्नखेवओ । किंममे वि एवं चेव जाव विउले सिद्धे ॥१॥

अर्थ—दूसरे अध्ययन का उत्क्षेप। किंम नामक गाथापति का कथन प्रथम अध्ययन में कथित मकाई गाथापति के समान ही समझना चाहिए यावत् विपुलगिरि से सिद्धि प्राप्त की।

बीयं अज्झयणं समरं ।

द्वितीय अध्ययन समाप्त

तृतीय अध्यायः

मूल—तत्रस्स उक्त्वेवञ्चो । तेणं कालेणं तेणं ससएणं रायगिहे नयरे, गुणसिलए चेइए, सेणिए राया चिल्लणा देवी । १॥

अर्थ—तीनरे अध्ययन का उत्प्रेष कहना । उस काल और उस समय मे राजगृह नगर था । गुणशिलक नामक नैल्य था । श्रेणिक राजा था । चेलना रानी थी ॥१॥

मूल—तत्थ ग रायगिहे णयरे अञ्जुणए णामं मालागारे परिचसइ, अट्टु जाव अपरिभूए ॥२॥

अर्थ—राजगृह नगर मे अट्टुन नामक माली निवास करता था । वह ऋद्धिमान् यावन् अपराभूत था ॥२॥

मूल—तम्म गं अञ्जुणयस्स मालागारस्स वंधुमतीणामं भारिया होत्था, मुकुमाला जाव सुरूवा ३।

अर्थ—उन अट्टुन मायाकार ही वन्धुमति नामक पत्नी थी । वह मुकुमार यावन् मुन्दर रूप वाली थी ॥३॥

मूल—तम्म गं अञ्जुणयस्स मालागारस्स रायगि-म्म वदिया एत्थ णं महं एणे पुण्णारामे होत्था, सिग्गे जाव निग्गमभूए, दमद्ववन्नकुग्गकुमुभिण् पानादीण् दरिमणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे ॥४॥

अर्थ—राजगृह नगर से बाहर अट्टुन माली का एक वज्र पुष्पाराम (इतना का व्रगीना) था । वह सचन हस्त्रिणी

से कृष्णवर्ण था । पाँच वर्ण के फूल वहाँ फूले रहते थे । दर्शकों के चित्त को प्रसन्न करने वाला, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप था—उसे देखते—देखते नेत्र थकते नहीं थे और पुनः पुनः नया रूप दिखाई देता था ॥४॥

मूल—तस्स णं पुष्पारामस्स अदूरसामंते एत्थ णं अज्जुणयस्स मालागारस्स अज्जय—पज्जय—पिइपज्जयागए अणेग कुलपुरिसपरपरागए मांगरपाणिस्स जकखस्स जकखाययणे होत्था, पोराणे दिव्वे सच्चे

जहा पुरणभइ ॥५॥

अर्थ—उस पुष्पाराम से न बहुत दूर, न बहुत निकट (पुष्पाराम के अन्दर) मुद्गरपाणि नामक यक्ष का यक्षायतन (मन्दिर) था । वह अर्जुन माली के पिता दादा, पडदादा, आदि अनेक पीढियों से मान्य, प्राचीन, दिव्य और सच्चा था । उववाई सूत्र में पूर्णभद्र चैत्य का जैसा वर्णन है, वही यहाँ जान लेना चाहिए ॥५॥

मूल—तत्थ णं मोगगरपाणिस्स पडिमा एगं महं पलसहस्सणिप्फण्णं अयोमयं मोगगरं गहाय चिट्ठइ ।६।

अर्थ—उस यक्षमन्दिर में मुद्गरपाणि नामक यक्ष की प्रतिमा एक हजार पल * वजन के लोहे के मुद्गर को लिये हुई थी ॥६॥

मूल—तए णं से अज्जुणए मालागारे बालप्पभिइं चेव मोगगरपाणिजकखस्स भत्ते यावि होत्था, कल्लाकल्लि पच्छियपिडगाइं गेण्हइ, गेरिहत्ता रायगिहाओ नगराओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेषेव पुष्पारामे तेणोव उवागच्छइ, उवागच्छिता पुप्फुच्चयं करेइ, करित्ता अग्गाइं वराइं पुष्पाइं गहाय जेषेव मोगगर

* पाँच रत्ती का एक माशा, सोलह माशो का एक सोनया (अर्थात् तीन टाका का एक सोनया) और चार सोनया का एक पल होता है ।

पाणिम्य त्रकलाययणे नेगेव उवागच्छद्, उवागच्छिता मोगरपाणिस्स जक्खस्स मद्दिहिं पुप्फच्चयणे केइ,
करिणा नाणुपायवडिण् पणामं करेइ, करिन्ता तओ पच्छो रायमग्गोसि वित्तिं क्कपमाणे विहरइ ॥७॥

श्रे—अत्रुं न मानी वचन ने ही मुद्गरपाणि यक्ष का भक्त था । वह प्रतिदिन वाम की टोकरी लेकर राजगृह
नग्न ने निरुचना और पुण्याराम में आता । वहाँ जाकर पुष्पो का चयन करता, फिर प्रधान और उत्तम फूल लेकर
मुद्गरपाणि यक्ष के मन्दिर में जाना और मुद्गरपाणि यक्ष का महाहं पुष्पार्चन करता था । तत्पश्चात् जमीन पर घुटने
देव कर वगाम लग्ना और उनके बाद राजमार्ग पर पुण्यारि क्षेत्र कर अपनी आजीविका चलाता था ॥७॥

मूल—तथ्य गं रायगिहे रायरे ललिया यामं गोड्डी परिवसइ, अड्डा जाव अपरिभूया, जंक्कयसुकया
यावि दोन्था ॥८॥

श्रे—उन राजगड् नगर में ललिता नामक गोड्डी (मित्र मंडली) रहती थी, वह समृद्ध यावत् किल्ली से हार लाने
ता तो नती थी । यह मंडली जो कृत्र भी करती वह अच्छा ही कहलाता था—क्योंकि उसके विरुद्ध बोलने का किल्ली में
नाम नती था ॥८॥

मूल—तए गं रायगिहे रायरे अण्णया कयाइ - पमोए घुडे यावि होत्था । ९॥

श्रे—रापशूट नगर में किल्ली नमय प्रमोद की-हर्गोस्सव मनाने की बोपणा हुई ॥९॥

मूल—तए गं से अज्जुणए मालागारे कल्लं पभूयतरएहिं पुप्फेहिं कज्जमिति कट्ठु पच्चूमकाल-
रमयंमि चभूमवीए भारियाए मदिं पच्छियपिययाइ' गण्हइ, गेहिन्ता सयाओ गिदाओ पडिणिकखमइ, पडि-
णिलमिन्ता रायगिणं नयं मज्जकं मज्जेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छिता जेणव उवागच्छइ, उवागच्छिता

पडिगुगिता क्वाडंतेरमु निलुककंति, निच्चत्ता निफंदा तुसिणीया पच्छणा चिड्ढंति । १३॥

अर्थ—उम समय उन छह गोठिया पुरपो ने अर्जुन मालाकार को बन्धुमती भार्या के साथ आता देखा । देख कर वे आपस में कहने लगे—देवानुप्रियो ! यह अर्जुन माली बन्धुमती भार्या के साथ डवर आ रहा है तो हमारे लिए अच्छा होगा कि हम अर्जुन माली की मुझके बाँध कर बन्धुमती भार्या के साथ विपुल भोग भोगें । उन लोगों ने यह कथन आपस में मान्य किया । वे यक्षायतन के किवाडो के पीछे छिप कर निच्चल, निस्पन्द, मौन होकर डुबक रहे ॥१३॥

मूल—तए णं से अञ्जुणए मालागारं वंशुमतीए सद्धि जेषेव मोगगरपाणिजक्खस्स
अकसाययणे तेणेव उवागच्छह, उवागच्छत्ता आलोए पणामं करेइ, करित्ता महरिहं- पुफुच्चणं करेइ, करित्ता
जाणुपायवडिए पणामं करेइ ॥१४॥

अर्थ—नराञ्चान् अर्जुन मानी अपनी बन्धुमती भार्या के साथ मुद्गरपाणि यद्य के मन्दिर में पहुँचा । पहुँच कर उडि तन्ने ती उगंने यद्य ती प्रतिमा को नमस्कार किया । नमस्कार करके महाहं (बड़ी के योग्य) पुणार्चन किया और फिर माली पर तुटने देक कर प्रणाम किया ॥१४॥

मूल—तए णं ते छ गोठिल्ला पुरिमा दवदवस्स क्वाडंतेरंतिो णिग्गच्छंति, णिग्गच्छत्ता अञ्जुणयं
मालागारं गेएत्तति, गेण्हत्ता अवय्योडगवंधण करंति, करित्ता वंशुमतीए मालागारीए सद्धि विपुलाइं भोग-
भोगारं वुंजसाणा विहरंति ॥१५॥

अर्थ—श्री गणपते—उन् गोठिया पुरग दवादव (नटाट) क्वाडो के पीछे से निकले । निकल कर उन्होंने अर्जुन माली को नमस्कार किया । उनके ताद-परचा र दिये और बन्धुमती मानिन के माय मन चाहे भोग भोगते हुए निचरने लगे ॥१५॥

मूल—तए शं तस्स अज्जुणयस्स मालागारस्स अयं अज्जत्थिए जाव सहुप्पज्जित्था—एवं खलु अहं बालप्पभिइं चेव मोगगरपाणिस्स भगवओ कल्लाकल्लि जाव वित्तिं कप्पेमाणे विहरामि, तं जइ ण मोगगरपाणिजक्खे इह सण्हित्ते होत्ते, से शं ममं-एयारूवं आवइं पावेज्जमाणं पासत्ते ? तं णत्थि णं मोगगरपाणिजक्खे इह सनिहित्ते । सुव्वत्तं तं एस कट्ठे ॥१६।

अर्थ—उस समय अर्जुन माली के मन में ऐसा विचार उत्पन्न हुआ—मैं बचपन से ही प्रतिदिन मुद्गरपाणि भगवान् की पुष्पपूजा भक्ति करता आ रहा हूँ और इनकी पूजा करने के पश्चात् ही अपनी आजीविका करता हूँ । सो यदि मुद्गरपाणि यक्ष यहाँ इस प्रतिमा में या समीप में होते तो क्या मुझे इस आपत्ति में पड़ा हुआ देख सकते ? (कदापि नहीं ।) वास्तव में मुद्गरपाणि यक्ष यहाँ समीप में नहीं है । स्पष्ट ही यह कष्ट मात्र है ॥१६॥

मूल—तए शं से मोगगरपाणिजक्खे अज्जुणयस्स मालागारस्स अयमेयारूवं अज्जत्थियं जाव वियाणत्ता अज्जुणयस्स मालागारस्स सरीरयं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता तडतडस्स बंधणाइं छिइइ, तं पल्लसहस्स-णियफ्फन्नं अयोमयं मोगगरं गेइहइ, गेण्हित्ता ते इत्थिसत्तमे छ पुरिसे थाएइ । १७॥

अर्थ—तब मुद्गरपाणि यक्ष ने अर्जुन माली के इस विचार—अध्यवसाय को जान लिया । उसी समय अर्जुन माली के शरीर में प्रवेश किया । उसके प्रवेश करते ही सारे बंधन तड़ातड़ा टूट गये । उसने एक हजार पल के लोहमय मुद्गर को ग्रहण किया और उन छह पुरुषों का तथा सातवीं स्त्री का घात कर डाला ।

तए शं से अज्जुणए मालागारे मोगगरपाणिणा जक्खेणं अण्णइट्ठे समाणे रायगिहस्स नयरस्स परिपेरत्तेणं कल्लाकल्लि छ इत्थिसत्तमे पुरिसे थाएमाणे विहरइ ॥१८॥

संज्ञान-सद्वत्त्व अर्जुन मान्नी मुद्गररपाणि यक्ष के द्वारा अधिष्ठित होकर राजगृह नगर के चारों ओर घूमने लगा और पतिशिल स्तूप पुरो और गतवो न्यो का ध्यान करने लगा ॥१२॥

मूल—नए ण रायगिहे नयरे भिवाडग जात्र मज्ञापहेसु बहुजणो अएणमणस्स एवमाइकखइ ४—
एवं वन्तु देवानुत्थिया ! अज्जुण मालागारे मोगगरपाणिया। अण्णाइंडे समाणे रायगिहे नयरे वहिया छ इत्थि-
यचने पुरिसे घाएमाणे विहरइ ॥१६॥

अर्थ—नव राजगृह नगर में, शृंगारकृत्यो (तिकोने मार्ग) में यात्रा महापथों में बहुत-से लोग आपस में इस प्रकार कलने को-देवानुत्थियो ! अर्जुन मान्नी मुद्गररपाणि यक्ष के द्वारा अधिष्ठित होकर राजगृह नगर से बाहर छह पुरो हो और मान्नी स्त्री हो प्रतिदिन मार डालता है ॥१६॥

मूल—नए णं मे सेणिए राया इमीमे कइए लद्धडे समाणे कोडुवियपुरिसे सदावेइ, सदावित्ता
एवं वयाभी एव वन्तु देवानुत्थिया ! अज्जुणए मालागारे जात्र घाएमाणे विहरइ, तं मा णं तुब्भे केई तएस्स
वा रुद्धए वा पाणियम्म वा पुःरुफलानं वा अट्टाए सइ णिग्गच्छउ; मा णं तस्स सररीस्स वावत्ती भविस्सइ
चि रुद्धे दोच्चं पि तच्चं पि घोसणयं घोसेह, वामित्ता खिण्णमेव ममेयं पच्चप्पिणह । २० ।

अर्थ—सैनिक गणा ने उक्त नमाचार नून कर लीटु निक पुरो को डुलवाया । तुत्रा कर कहा-देवानुत्थियो ! अर्जुन मान्नी स्त्री पुरो और मान्नी स्त्री का ध्यान करता विचरता है, अतएव तुम नगर में उस प्रकार की घोषणा कर दो कि-देवानुत्थियो ! तुमसे मे लोई भी काठ के लिए, घान के लिए, पानी के लिए या फूल-फल के लिए, नगर के बाहर एव मार भी न पाओ । ल्ही ऐना न हो कि तुम्हारे गरीर का विनाश हो जाए । ऐसी घोषणा दो बार और तीन बार करने मेरी आज्ञा मर्णित करो ॥२०॥

मूल—तए गं कोडुं विय जाव पच्चप्पियंति ॥२१॥

अर्थ—तत्पश्चात् कौटुम्बिक पुरुष यावत् घोषणा करके अज्ञा वापिस लौटाते है ॥२१॥

मूल—तत्थ गं रायगिहे नयरे सुदंसणे नामं सेट्ठी परिवसइ, अड्डु ॥२२॥

अर्थ—राजगृह नगर में सुदर्शन नामक श्रेष्ठी (सेठ) निवास करता था । वह ऋद्धिशाली तथा किसी से पराभव

पाने वाला नहीं था ॥२२॥

मूल—तए गं से सुदंसणे समखोवासए यावि होत्था, अभिगमयजीवाजीवे जाव विहरइ ॥२३॥

अर्थ—सुदर्शन श्रेष्ठी श्रमणोपासक (श्रावक) था । वह जीवाजीव आदि नौ पदार्थों का ज्ञाता था, यावत् चौदह

प्रकार का दान देता हुआ विचरता था ॥२३॥

मूल—तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जाव समोसठे जाव विहरइ ॥२४॥

अर्थ—उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर यावत् राजगृह नगर में पधारे यावत् नगर से बाहर

गुणशिलक चैत्य में तप-संयम से आत्मा को भावित करते हुए विचरते लगे ॥२४॥

मूल—तए गं रायगिहे णयरे सिंघाडग जाव मत्तापहेसु बहुजणो अएणमएणस्स एवमाइक्खइ २ जाव

किमंग पुण विपुलस्स अट्टस्स गइणयाए ॥२५॥

अर्थ—तब राजगृह नगर में शृङ्गाटक यावत् महापथों में बहुत-से लोग आपस में यो कहने लगे यावत् प्ररूपण करने लगे कि-देवानुप्रियो ! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी यावत् गुणशिलक चैत्य में विचरते है, उनके नाम मात्र का श्रवण करना ही महान् फलदायक है, तो फिर उनके मुखारविन्द से धर्मकथा सुनने और प्रश्नों का उत्तर पाने की तो बात ही क्या है ॥२५॥

मूल—तए. णं तस्म मुदंमणस्स बहुजणस्स अतिए एयमहं सोच्चा निमस्स अयमेयारूवे अड्कत्थिए जाव नमृपडित्थया-एवं वल्लु ममणे जाव विहरइ, तं गच्छामि णं समणं भगवं महावीरं वंदामि नमंसांमि, एवं गंपेदइ, संपेत्तिता जेणेत्र अम्मपापियरो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता करयल जाव कट्टु एवं वयासी-एवं वल्लु अम्मयाओ ! ममणे जाव विहरइ, तं गच्छामि णं समणं भगवं महावीरं वंदांमि जाव पज्जुवासांमि ॥२६॥

अर्थ—तब ब्रह्म जनों के मूल ने यह वृत्तान्त सुन कर और हृदयगम करके सुदर्शन सेठ को ऐसा विचार उत्पन्न हुआ—अम्मण भगवान् महावीर स्वामी यावन् विचर रहे है, अतएव मैं जाऊँ और श्रमण भगवान् महावीर को वदना-नमस्कार करूँ । उन प्रकार विचार करके मुदर्शन अपने माता-पिता के पास गया और दोनों हाथ जोड़ कर तथा मस्तक पर हाथ रखके उन परहार कहने लगा—माता-पिता ! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पधारै है, अतएव मैं जाता हूँ और अम्मण भगवान् महावीर को वन्दना-नमस्कार करके पयुं पामना करूँगा ॥२६॥

मूल—तए. णं तं मुदंमणमेडिं अम्मपापियरो एवं वयासि-एवं खलु पुत्ता ! अज्जुणए मालागारे जाव याएवाणे विहरइ, त मा मं तुमं पुत्ता ! ममणं भगवं महावीरं वंदए खिग्गच्छादि, मा णं तव सरीरयस्स वापानी भविस्सइ । तुमएणं इद्दए चैव ममणं भगवं महावीरं वंदाहि नमंमाहि ॥२७॥

अर्थ—तब मुदर्शन सेठ के माता-पिता ने उनसे कहा—हे पुत्र ! अर्जुन मानी यावन् वात करता करता है । तुम अम्मण भगवान् महावीर को वदना करने जाओगे तो कहीं ऐसा न हो कि अर्जुन मानी के द्वारा शरीर को वापना हो जाय । तुम वहाँ न जाओ । वहाँ गये हुए ही श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना-नमस्कार करो ॥२७॥

मूल—तए. णं से मुदंमणे सेट्ठी अम्मपापियरं एवं वयासी किएणं अहं अम्मयाओ ! समणं भगवं महा-

वीरं इहमागयं, इह पचां, इह समोसढं इह गए चेष वंदिस्सामि नमंसिस्सामि ? तं गच्छामि णं अहं अम्म-
याओ ! तुम्भेहिं अब्भणुणाए समाणे समणं भगवं महावीरं वंदामि जाव-पज्जुवासांमि ॥२८॥

अर्थ तब सुदर्शन सेठ ने माता-पिता से ऐसा कहा-अहो माता-पिता ! श्रमण भगवान् महावीर यहाँ आये है, यहाँ प्राप्त हुए है, यहाँ पधारे है, फिर मैं यही घर पर रह कर कैसे वन्दना करूँ ? हे माता-पिता ! मैं आपकी आज्ञा पाकर वहाँ जाना चाहता हूँ और श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना करना चाहता हूँ यावत् उपासना करना चाहता हूँ ॥२८॥

मूल - तए णं तं सुदंसणसेट्ठिं अम्मपापियरो जाहे नो संचाएन्ति बह्वहिं आश्रवणाहिं ४ जाव परू-
वणाहिं य परूविचाए ततो णं ते एवं वयासी-अहासुहं ॥२९॥

अर्थ - तत्परचाव सुदर्शन सेठ को उसके माता-पिता जब बहुत प्रकार से कह कर यावत् प्ररूपणा करके समझाने में समर्थ न हुए तो इच्छा न होने पर भी बोले-जैसे तुम्हे सुख हो, वैसा करो ॥२९॥

मूल - तए णं से सुदंसणे अम्मपापिईहिं अब्भणुणाए समाणे एहाए सुद्धप्पावेसाहं जाव सरीरे
सयाओ पिहाओ पडिणिकखमइ, पडिणिकखमिचा पायविहारचारेणं रायगिहं नयरं मज्झमज्झेणं निगगच्छइ,
निगगच्छिता मोगरपाणिसस जवखाययणस्स अदूरसामंतेणं जेषेव गुणसिलए चेइए, जेषेव समणे भगवं महा-
वीरे तेणेष पहारेत्थ गमणाए ॥३०॥

अर्थ - तदनन्तर सुदर्शन सेठ ने माता-पिता की अनुमति पाकर स्नान किया । शुद्ध एव सभा में प्रवेश करने योग्य वस्त्र धारण किये । शरीर को विभूषित किया । फिर अपने घर से निकल कर पैदल चलता हुआ, राजगृह नगर के बीचों-बीचों-

वीच टोकर मुद्गररामि यक्ष के यक्षालय के कुछ पास से जहाँ गुणधिलक चैत्य और जहाँ श्रमण भगवान् महावीर
 दे. डी. डी. गमन करने लगा ॥३०॥

मूल—नए गं मे मोगरपाणी जकखे सुदंमणं समणोवासयं अद्रसामंतेणं वीडियमाणं पासइ,
 पापिणा आमुरेत्ते तं पलपइस्सनिष्कन्त अओमयं मोगरं उल्लालेमाणे उल्लालेमाणे जेणेव सुदंसणे समणो-
 वानए तेनेव पहारेत्थे गमणाए ।३१॥

मं—इय मज्ज मुद्गरपाणि यअ ने मुदंनं श्रावक को, न बहुत दूर और न बहुत पास से, जाते देखा देखते होवह
 कउ डू ग । एक नजार पल प्रमाण वजन बाने बाने के उस मुद्गर को उछालता-धुमाता हुआ मुदयंन श्रावक की तरफ ही
 जाने लगा ॥३१॥

मूल—नए गं मे सुदंसणे ममणोवामए मोगरपाणि जकखं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता श्रभीए,
 पनत्थं अणुच्चिगे अकरुभिए अचलिए असंभंते वत्थाणं भूमिं पमज्जइ, पमज्जित्ता करयल जाव एवं
 ययाओ-नमोत्थु गं चरहंवाणं जाव मंपचाणं, समोत्थु णं समणस्स भगवओ जाव मंपाविउकामस्स; पुच्चि पि
 णं भंते ! मए नमणस्सं भगवओ महावीरस्स अतियाओ थूलए पाणाइवाए पच्चक्खाए जावजीवाए, थूलए
 मुसावाए, थुलए अदिन्नादाणं, मदारमंतोसे कए जावजीवाए, इच्छापरिमाणे कए जावजीवाए, तं इयाणि पि
 तन्नेव थंतिए मच्चं पाणाइयायं पच्चक्खामि जावजीवाए मच्चं मुसावायं, सच्चं अदत्तादाणं, सच्चं मेहुणं, सच्चं
 परिग्गं पास्सामि जावजीवाए, मच्चं कोहं जाव मिच्छादंसणसल्लं पच्चक्खामि जावजीवाए, सच्चं असणं
 गणं गाधं गाधं चउच्चिदं पि प्राधारं पच्चक्खामि जावजीवाए । जइ णं एत्तो उवसग्गाओ मुच्चिस्सामि

तो मे कप्यह पारेत्तए, अह णं एत्तो उवसग्गाओ न मुच्चिस्सामि, तओ मे तथा पच्चक्खाए चेव ति कट्टु सागारं पडिमं पडिवज्जइ ॥३२॥

अर्थ—तव सुदर्शन श्रमणोपासक ने मुद्गरपाणि यक्ष को आता देखा । देख करके वह डरा नहीं, त्रास पाया नहीं, उद्विग्न हुआ नहीं, क्षुब्ध हुआ नहीं, चलित हुआ नहीं, घबराया नहीं, परन्तु वस्त्र से भूमि का प्रमार्जन किया । भूमि का प्रमार्जन करके, हाथ जोड़ कर, मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार बोला—नमस्कार हो अरिहन्तों को यावत् मुक्ति प्राप्तों को । नमस्कार हो श्रमण भगवान् महावीर को जो यावत् मुक्ति के अभिलाषी है । मैंने पहले भी श्रमण भगवान् महावीर के निकट स्थूल प्राणातिपात का जीवनपर्यन्त के लिए त्याग किया था, इसी प्रकार स्थूल मृषावाद का स्थूल अदत्तादान का त्याग किया था, स्वस्त्रीसंतोष व्रत धारण किया था, और जीवन पर्यन्त के लिए इच्छा परिमाण किया था, मगर अब उन्हीं भगवन्त के निकट यावज्जीवन सर्वथा प्राणातिपात का त्याग करता हूँ, सर्वथा मृषावाद का, अदत्तादान का, मैथुन और परिग्रह का यावज्जीवन के लिए त्याग करता हूँ, सर्वथा प्रकार से क्रोध का यावत् मिथ्या-दर्शनशाल्य का अर्थात् अठारहों पापस्थानकों का और यावज्जीवन के लिए अशन, पान, खादिम और स्वादिम रूप चारों प्रकार के आहार का त्याग करता हूँ । अगर मैं इस उपसर्ग से मुक्त हो जाऊँगा तो मुझे इन प्रत्याख्यानों को पारना कल्पता है । यदि इस उपसर्ग से मुक्त न होऊँ तो यह प्रत्याख्यान जैसे किये है वैसे ही रहे । ऐसा सकल्प करके सुदर्शन ने सागारी अनशन अगीकार किया ॥३२॥

मूल—तए णं से भोगगणणी जक्खे तं पलसहस्सनिफ्फणं अयोमयं भोगगरं उल्लानेमाणे-उल्लालेमाणे जेषेव सुदंसणे समणोवासए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता नो चेव णं संचाएति सुदंसणं समणो-वासयं तेयमा समभिपडित्तए ॥ ३३ ॥

अयं—तत्र मुद्गरपाणि यक्ष उग्र हजार पल प्रमाण भारवाले लोहे के मुद्गर को उछालता-उवारता हुआ, जहाँ मुर्द्वर्जन श्रमणोगोपागरूया, वहाँ आया। मगर मुर्द्वर्जन श्रमणोपासक को उपसर्ग करने-पीडा पहुँचाने में समर्थ नहीं हुआ। ३३।

मूल तए ण से मोग्गरपणी जनस्वे मुदंसरां समणोवासयं सव्वओ समंता परिवोलेमारो-परि-
 वानंमाण जाहे नो संचाणइ मुदंसणं समणोवागयं तेयमा सनभिपडित्तए ताहे सुदसणस्स समणोवासयस्स
 पुरओ नपडिवं मपडित्तं टिच्चा मुदंसणं समणोवागयं अग्निमिमाए दिड्डीए सुचिरं निरिक्खइ, निरिक्खत्ता
 अउउरपग्ग मालागारस्स गरीरं निपज्जइ, विप्पज्जित्ता तं पलसहस्सण्णिकन्तं अयोमयं मोग्गरं गहाय जामेव
 दिन पाउउभूण तामेव डिमं पडिणए । ३४ ॥

अर्थ—तत्र मुद्गरपाणि यक्ष मुर्द्वर्जन श्रावण के चारों ओर फिरने लगा। फिर भी जब वह मुर्द्वर्जन श्रावक को
 पट्ट पहुँचाने में समर्थ नहीं हुआ, तब मुर्द्वर्जन श्रमणोपासक के ठीक सामने खड़ा होकर मुर्द्वर्जन श्रावक को अपलक दृष्टि
 में उभरा तब देखा गया। देवने के बाद उग्र यक्ष ने अर्जुन माता के शरीर का परित्याग कर दिया और हजार पल
 यमान निम्नवत् पीठमय मुद्गर को लेकर जिन ओर में आया था, उसी ओर अर्थात् देवालय की ओर चला गया ॥ ३४ ॥

मूल—तए णं मे अउउग्गए मालागारे मोग्गरपाणिणा जक्खेणां विप्पपुक्के ममारो धसत्ति धरणी-
 तर्त्तणि मड्ढेणंि मनिवण्णि ३५ ॥

अर्थ—तत्र तत्र अर्जुन माता को मुद्गरपाणि यक्ष ने त्याग दिया तो वह घडाम से बरती पर सर्वांग से
 बरस गया ॥ ३५ ॥

मूल—तए णं मे मुदंसणो समणोपागए निरुत्तपग्गमिति वड्ढु पडिमं पाणेइ ॥ ३६ ॥

अर्थ—तब सुदर्शन श्रमणोपासक ने 'उपसर्ग दूर हुआ' ऐसा जानकर सागारिक प्रतिमा (प्रतिज्ञा) को पार लिया ॥ ३६ ॥

मूल—तएवं तं से अञ्जुणए मालागारे तत्रो सुहुचंतरेणं आमस्थे समागो उट्ठेइ, उट्ठिचा सुदंसणं समणोवासयं एवं वयासी—तुभे णं देवाणुप्पिया ! के ? कहिं वा संपत्थिया ? । ३७ ॥

अर्थ—तत्पश्चात् वह अर्जुन मालाकार थोड़ी देर में आश्रित होकर (होश-हवास में आकर) उठा। उठ कर उसने सुदर्शन श्रमणोपासक से कहा—देवानुप्रिय ! तुम कौन हो ? कहाँ जा रहे हो ? ॥ ३७ ॥

मूल—तएवं तं से सुदंसरो समणोवासए अञ्जुणयं मालागारं एवं वयासी एवं खलु देवाणुप्पिया ! अहं सुदंसरो णामं समणोवासए अभिगयजीवाजीवे, गुणसिलए चेइए समणं भगवं महावीरं वंदित्तए संपत्थिए । ३८ ॥

अर्थ—तब सुदर्शन श्रावक ने अर्जुन मालाकार से कहा—हे देवानुप्रिय ! मैं सुदर्शन नामक श्रमणोपासक हू। जीव और अजीव का जानकार हू। गुणशिलक चैत्य में श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना करने के लिए जा रहा हू ॥ ३८ ॥

मूल—तएवं अञ्जुणए मालागारे सुदंसणं समणोवासयं एवं वयासो—इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! अहमवि तुमए सद्धिं समणं भगवं महावीरं वंदित्तए जाव पज्जुवासित्तए ।

‘अहासुहं देवाणुप्पिया’ । ३९ ॥

उरें—तब अर्जुन माली ने मुदंगन अमगोपानक ने उन प्रकार कृहा-देवानुप्रिय ! मैं भी तुम्हारे नाथ श्रमण भगवान् महावीर को बन्दना करने और उनकी उपासना करने की अभिनाया करता हूँ ।

तब मुदंगन ने कृहा-जैने मुद्रे गुन उगजे, वैना ही करो ॥३६॥

मूल—तए गं मे मुदंसणे समगोवासए अज्जुणएणं सालागारेणं सट्ठि जेणेव गुणसिए चेइए जेणेव समणे भगवं महावरे नंगेव उवागच्छइ, उवागच्छित्त। अज्जुणएणं सालागारेणं सट्ठि समणं भगवं महावीरं निकमुत्तां जाव पज्जुवाइइ । ४० ।

अर्थ—तब मुदंगन अमगोपानक अर्जुन माली के साथ जिनर गुणजिलक चैत्य और जिधर श्रमण भगवान् महा-वीर थे, उधर ही पहुँचा । पद्वेन कर उनने अर्जुन माली के नाथ अमण भगवान् महावीर को तीन बार प्रदक्षिणा करके गारु पयु गानना गी ॥४०॥

मूल—तए ग समणे भगवं महावीरं मुदंसणस्स समणोवासयस्स अज्जुणयस्स तीसे य धम्मकदा । मुदंसणे पट्ठिवाए ॥४१॥

अर्थ—तब अमण भगवान् महावीर ने मुदंगन श्रावक को, अर्जुन को और उगस्थित नमूह को धर्मकथा कही । अमकथा मुन कर मुदंगन पीठ गया ॥४१॥

मूल—तए गं से अज्जुणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्छा निमम्म हइत्तुइ जाव एरं ययामी-नट्ठामि ग भंते ! गिग्गंयं पाययणं जाव अत्थुइमि ? 'अहासुइं देवाणुपिया ! ॥४२॥

अर्थ—उन माली ने अमण भगवान् महावीर के मगी धर्मकथा मुन कर, हृदयगम करके, हृषित एव पुत्तुट होकर

कहा-भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूँ । यावत् मेरी आपके निकट दीक्षा लेने की अभिलाषा है ।

तव भगवान् बोले-देवानुप्रिय ! जैसे तुम्हें सुख उपजे वैसे करो ॥४२॥

मूल—तए णं से अज्जुणए उत्तरपुग्त्थिमदिसिभागं श्रवक्कमइ, श्रवक्कमिच्चा समयेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, करिच्चा जाव अणगारे जाए जाव विहरइ ॥४३॥

अर्थ—तव अर्जुन ने इशानकोण में जाकर अपने ही हाथ से पंचमुष्ठीक लोच किया । लोच करके यावत् अनगार होकर विचरने लगा ॥४३॥

मूल—तए णं से अज्जुणे अणगारे जं चेव दिवसं मुं डे जात्र पव्वइए तं चेव दिवस समयं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदिच्चा नमंसिच्चा एयारूवं उग्गहं उग्गिण्हइ-कप्पइ मे जावज्जीवाए छड्डं छट्ठेणं अणि विखुत्तेणं तवोकम्ममेणं अप्पाणं भावेमाणस्स विहरिच्चाए चि कट्ठु अथमेयारूवं अभिगहं अगोण्हइ, अगिण्हिच्चा जात्रजीवाए जाव विहरइ ॥४४॥

अर्थ—तत्पश्चात् अर्जुन अनगार जिस दिन मुंडित एवं प्रव्रजित हुए, उसी दिन उन्होंने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार का अभिग्रह ग्रहण किया-मुझे निरन्तर जीवन पर्यन्त षष्ठभक्त अर्थात् बेले-बेले का तप करके, अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरना कल्पता है । उन्होंने इस प्रकार का आजीवन अभिग्रह धारण किया यावत् अपनी आत्मा को तप एवं समय से भावित करते हुए विचरने लगे ॥४४॥

मूल—तए णं से अज्जुणए अणगारं छट्ठक्खमणपारण्यंसि पढमपोरिसीए सड्ढायं करेइ, जहा गोगमसामी जाव अडइ ॥४५॥

अर्थ—नव अर्जुन अनगार ने देने की पारणा के दिन प्रथम प्रहर में स्वाध्याय किया। दूसरे प्रहर में व्यान किया। तीसरे प्रहर में जिन प्रहार गीतम स्वामी भगवान् की आज्ञा लेकर गोचरी के लिए गये उसी प्रकार अर्जुन अनगार भी राजगृह नगर में भिक्षा के लिए भ्रमण करने लगे ॥४१॥

मूल—तए खं तं अञ्जुणयं अणगारं गयगिहं नयरे उच्च जाव अडमाणं वहवे इत्थीओ य पुरिसा य उदरा य पक्खला य लुवाणा य एवं वयामी इयेणं मे पिया मारिए, इमेणं मे माया मारिया, माया० भगिणी० मज्जा० पुन० धया० मुग्घा मारिया, इमेणं मे अणणयरे सयससवंधिपस्सिये मारिए त्ति कट्टु अणणइया अरकोमंति, अणणइया हीलंति निदंति खिमंति गरिहंति, तज्जेति, तालेति । ४६॥

अर्थ—नव राजगृह नगर में भिक्षा के लिए अटन-करने हुए अर्जुन अनगार को देख कर बहुत-सी महिलाएँ, बूढ़, लोटे, बटे और युवक जन उन प्रकार कहने लगे—इसने मेरे पिता को मारा था, इसने मेरी माता को मारा था, इसी को मारा था, इसने मेरे भाई, बहिन, स्वजन, पुत्र, पुत्री या पुत्रवधू को मारा था, इसने मेरे अमुक स्वजन को, नभोजन नी या परिजन को मारा था। उम प्रकार कह कर कोई-कोई अर्जुन मुनि पर आक्रोश करने लगे, कोई-कोई बर्षा नीचना करने लगे, लोटे-लोटे निन्दा करने लगे, कोई निस्सियाने (क्रुद्ध होते) थे, कोई गद्दी करने लगे, यहाँ तक कि लोटे-लोटे नांवा और नाजना भी करने लगे ॥४६॥

मूल—तए खं मे अञ्जुणए अणगारं नेहिं वहहिं इत्थीहि य पुरिमेहि य उदरेहि य मत्तल्लएहि य अणणएहि य प्रायेनेज्जमाणे जाव तालेज्जमाणे तेमि मलमा वि अपउम्ममाणे सुम्मं महइ सुम्मं खमइ, तिनियगइ, अणियमंड, मम्म महमाणे तित्तिल्लमाण अहियांसमाणे गयगिहं नयरे उच्चनीयमज्झिमाइ, इत्तं पउमाणं नइ भचं लभइ तो पाणं न लभइ, जया पाण लभइ तो भचं न लभइ ॥४७॥

अर्थ—उस समय अर्जुन अनगार ने बहुत-सी स्त्रियों द्वारा, पुरुषों द्वारा, छोटीं, बड़ीं और युवकों द्वारा आक्रोश यावत् ताडना करने पर मन से भी उनके ऊपर द्वेषभाव न धारण करते हुए उस आक्रोश आदि को समभाव से सहन किया, तितिक्षा की, अध्यास किया। यह सब करते हुए वे राजगृह नगर के उच्च, नीच और मध्यम घरों में परिभ्रमण करते थे। फिर भी उन्हे भोजन मिल जाता तो पानी न मिलता और यदि पानी मिलता तो भोजन न मिलता ! ॥४७॥

मूल—तए शं से अञ्जुणए अणगारे अदीणे, अविमणे, अकलुसे, अगाइले, अविसाई, अपरि-
तंतजोगी अडई, अडिचा रायगिहाओ गयराओ पडिणिकखमइ, पडिणिकखमिता जेणेव गुणसिलए चेइए
जेणेव समणे भगथ महावीरे जहेव गोयमसामी जाव पडिदंसइ पडिदसिता समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भ-
णुएणाए समाणे अमुच्छिए ४ विलमिथ पन्नगभूएणं अप्पाणेणं तमाहारं आहारेइ ॥४८॥

अर्थ—उस समय अर्जुन अनगार न दीनता धारण करते, न मन को उदास करते, न कलुषित करते, न मलिन करते, न विषाद करते और न ऊबते थे। वह आत्मभाव में स्थिर होकर भिक्षा के लिए अटन करते। अटन करने के पश्चात् वे राजगृह नगर से बाहर निकले और जहाँ गुणशिलक चैत्य और जहाँ भगवान् महावीर स्वामी थे, वहाँ पहुँचे। पहुँच कर गौतम स्वामी की तरह भगवान् को आहार दिखलाया। फिर भ्रमण भगवान् महावीर की आज्ञा प्राप्त कर अमूर्च्छित-अगृह भाव से उस आहार को ग्रहण किया—जैसे साँप बिल में प्रवेश करता है ॥४८॥

मूल—तए शं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइ रायगिहाओ पडिणिकखमइ, पडिणिकखमिता
बहिया जणवयविहारं विहरइ ॥४९॥

अर्थ—भ्रमण भगवान् महावीर अन्यदा कदाचित् राजगृह नगर से निकले। निकल कर बाहर जनपदों में (विभिन्न प्रदेशों में) विचरने लगे ॥४९॥

मूल—तए, णं से अञ्जुणए अणगारे तेणं उरालेणं विउलेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं महाणुभागेणं तवो-
 कम्मंणं अप्पाणं भावेमागे वट्टपडिपुण्णे छम्मासे सामणपरियाग पाउणइ, अद्धमासियाए संलेहणाए अप्पाणं
 भंमइ. तीमं भत्ताडं अगमगाए छेदेड. छेदित्ता नस्सट्टाए कीरइ नाव सिद्धे ॥५०॥

अर्थ—नव अजुंन अनगर ने उन उदार एवं विस्तीर्ण प्रयत्न से तथा ग्रहण किये हुए महान् फलदायक तपश्चरण
 ने अपनी आत्मा को भाविन करने हुए पूरे छह मास तक दीक्षा पाली । अद्ध मास की संलेखना का सेवन किया । अन-
 गन ने तीस मासों का ध्यान किया और जिम प्रयोजन के लिए नग्नभाव मुंडभाव धारण किया था, उसे पूर्ण कर यावत्
 निदि जान ली ॥५०॥

तीसरा अध्ययन समाप्त



चौथा अध्ययन

मूल—उक्खंवेप्रो चउत्थस्म अडक्कयणस्स । एवं खलु जंहु ! तेणं कालेणं तेणं नमएणं रायगिहं
 ययं, गुणसिए नेइ, तथ णं सेगिए राया, कासवे यामं गान्हावई परिववइ, ज्जा मंकाई, सोलस वासं
 पयियाषो, विउले मिडे ॥४१॥

अर्थ—जैसे अध्ययन का उत्तोप कहना चाहिए । मुधर्मा स्वामी बोले—हे जंहु ! उस काल और उस समय मे

राजगृह नगर था, गुणशिलक नामक चैत्य था। वहाँ श्रेणिक राजा था और काश्यप नामक गाथापति रहता था। जैसा मकई गाथापति का कथन किया, वैसा ही सब काश्यप का भी जानना। सोलह वर्ष तक संयम का पालन करके विपुलाचल से सिद्धि प्राप्त की ॥४॥

बीथा अध्ययन समाप्त



पंचम अध्ययन

मूल—एवं खेमए वि गाहावई, शवरं कागंदी नयरी, सोलसवासाहं परियाओ, विपुले सिद्धे । ५॥

अर्थ—इसी प्रकार खेम गाथापति का भी अधिकार समझना चाहिए। विशेषता यह है कि-खेम गाथापति काकंदी नगरी के निवासी थे। सोलह वर्ष तक संयम का पालन करके विपुल पर्वत से सिद्ध हुए ॥५॥

पाँचवाँ अध्ययन समाप्त



छठा अध्ययन

मूल—एवं धितिधरे वि गाहावई, कागंदीए शयरीए सोलसवासाहं परियाओ जाव विपुले सिद्धे । ६॥

श्रय—उमो प्रकार श्रुतिधर गाथापति का भी वृत्तान्त जानना चाहिए । वह काकंदी नगरी के निवासी थे ।
मोचन त्रयं नाम पाल कर विपुल पर्वत से सिद्ध हुए ॥६॥

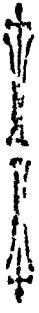
छठा अध्ययन समाप्त



सातवां अध्ययन

मूल—एवं कलासे वि गाद्वाचई सांगेए गयरे, वारस वासाहं परियाओ, विपुले सिद्धे ॥७॥
श्रयं—ज्ञान गाथापति का भी वृत्तान्त ऐसा ही है । वे साकेत नगर के निवासी थे । वारह त्रयं तक समय
पाल कर विपुल पर्वत से सिद्ध हुए ॥७॥

सातवां अध्ययन समाप्त



आठवां अध्ययन

मूल—एर हरिचंदणे वि गाहावई, सांगेए गयरे वारसवामाहं परियाओ, विपुले सिद्धे ॥८॥

अर्थ—इसी प्रकार हरिचन्दन गाथापति का भी वृत्तान्त जानना । साकेत नगर के निवासी थे । बारह वर्ष संयम पाल कर विपुल पर्वत से सिद्ध हुए ॥८॥

आठवाँ अध्ययन समाप्त



नौवाँ अध्ययन

मूल—एवं वारेत्तए वि गाहावर्द्धे, खवरं रायगिहे खगरे, बारस वासाइं परियाओ, विउले सिद्धे ।६।
अर्थ—इसी प्रकार बारवत्तक गाथापति का भी वृत्तान्त जानना चाहिए । वह राजगृह नगर के निवासी थे । बारह वर्ष तक संयम पाला । विपुल पर्वत से सिद्धि प्राप्त थी ॥६॥

नौवाँ अध्ययन समाप्त



दसवाँ अध्ययन

मूल—एवं सुदंसणे वि गाहावर्द्धे, खवरं वाणियगामे खयरे, दूहपलासे चेइए, पंच वासाइं परियाओ, विउले सिद्धे ॥१०॥

अर्थ—गुरुदेवों ने गाथापति का भी वृत्तान्त ऐसा ही समझना चाहिए। विशेषता यह है कि—वाणिज्याम नगर था, दूरगोपचान नामक चैत्य था। पाँच दिनों तक संयम पाना। त्रिपुलाचल से सिद्ध हुए ॥१०॥

दमत्रां अध्ययन समाप्त



ग्यारहवां अध्ययन

मूल—एवं पुण्यमर्दे वि गाहावर्दे, वाणियगामे ण्यरे, पंच वासाइं परियागं, विउले सिद्धे ॥११॥

अर्थ—गुरुदेवों ने गाथापति का वृत्तान्त भी इसी प्रकार समझना चाहिए। वाणिज्याम नगर था। पाँच वर्षों संयम का वादन किया। त्रिपुन ध्वंश से सिद्ध हुए ॥११॥

ग्यारहवां अध्ययन समाप्त



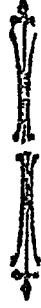
बारहवां अध्ययन

मूल—एवं तुमणभरे वि गाहावर्दे, सावत्थीए ण्यरीए बहु वासाइं परियाओ, विपुले सिद्धे ॥१२॥

अर्थ—इसी प्रकार गुणभद्र गाथापति का वृत्तान्त भी जानना चाहिए। वह श्रावस्ती नगरी के निवासी थे।

बहुत वर्षों तक संयम पाला । विपुल पर्वत से सिद्ध हुए ॥१२॥

चारहवां अध्ययन समाप्त



तेरहवां अध्ययन

मूल—एवं सुप्रइहे वि गाहावई, सावत्थीए णयरोए सत्तावीसं वासाइं परियाओ, विउले सिद्धे ।१३।

अर्थ—सुप्रतिष्ठ गाथापति का वृत्तान्त भी ऐसा ही है । श्रावस्ती नगरी के निवासी थे । सत्ताईस वर्ष संयम का पालन किया । विपुल पर्वत से सिद्ध हुए ॥१३॥

तेरहवां अध्ययन समाप्त



चौदहवां अध्ययन

मूल—एवं मेहे वि गाहावई, रायगिहे णयरे बहूइं वासाइं परियाओ, विउले सिद्धे ॥१४॥

अर्थ—मेघ गाथापति का वृत्तान्त भी ऐसा ही जानना चाहिए । राजगृह नगर में रहते थे । बहुत वर्षों तक संयम पाला । विपुल पर्वत से सिद्ध हुए ॥१४॥

चौदहवां अध्ययन समाप्त

पन्द्रहवां अध्ययन

मूल—तेगं वानेगं तेगं मएणं पोलासपुरं णयरं सिरिचणे उज्जाणे; तत्थ णं पोलासपुरे णयरं विजए नामं गया होत्था ॥१॥

अ—उम ज्ञान और उम समय मे पोलासपुर नामक नगर और श्रीवन नामक उद्यान था । पोलासपुर नगर मे विजए नामक राजा था ॥१॥

मूल—तेम गं विजयस्य रगणां भिरिनामं देवी होत्था, वएणओ । २॥

अ—उम विजय राजा की रानी श्रीदेवी थी । यहाँ रानी का वर्णन समझना चाहिए ॥२॥

मूल—तेम गं विजयस्य रगणो पुत्तो सिगीए देवीए अत्तए अइमुत्तो नामं कुमारं होत्था, सुकुमाले । ३॥

अ—उम विजय राजा का पुत्र श्रीदेवी का आत्मज अतिमुक्त नामक कुमार था । वह सुकुमार शरीर का धारक था ॥३॥

मूल—तेगं दालेगं तेगं मएणं ममणे भगवं महावीरे जात्र मिरिचणे विहरइ ॥४॥

अ—उम ज्ञान और उम समय मे उम राजावत् महावीर स्वामी यावत् श्रीवन उद्यान मे तप-नायक से आत्मा विहार करने लगे ॥४॥

मूल—तेषां कालेषां तेषां समेषां समेषा महावीरस्य जेहे अतेवासी इंदभूई जहा पबत्तीए जाव पोलासपुरे श्यरे उच्चनीच जाव अडइ ॥५॥

अर्थ—उस काल और उस समय मे श्रमण भगवान् महावीर के बडे शिष्य इन्द्रभूति (गौतम) नामक अनगर, जिनके शरीर आदि का वर्णन भगवतीसूत्र मे कहा है, यावत् बेले की पारणा के लिए पोलासपुर में ऊँच, नीच मध्यम कुलों मे अटन कर रहे थे ॥५॥

मूल—इमं च णं अतिमुत्तो कुमारे एहाए जाव विभूसिए, बहूहि दारएहि य दारियाहि य, डिभएहि य डिभियाहि य कुमारेहि य कुमारियाहि य सद्धि संपरिवुडे साओ गिहाओ पडिणिकखमइ, पडिणिकखमिचा जेखेव इंदडाओ तेखेव उवागच्छइ, उवागच्छिता तेहि बहूहि दारएहि य जाव संपरिवुडे अभिरममाणे अभिरममाणे विहरइ ॥६॥

अर्थ—इधर अतिमुक्त कुमार स्नान करके यावत् विभूषित होकर बहुत-से बच्चों, बच्चियों, बालकों, बालिकाओं, कुमारो और कुमारिकाओं के साथ, परिवृत्त हो कर, अपने घर से बाहर निकला । निकल कर जहाँ खेलने की जगह थी, वहाँ पहुँचा । पहुँच कर उन बच्चों आदि के साथ खेलने लगा ॥६॥

मूल - तए णं भगवं गोयमे पोलासपुरे नगरे उच्चनीय जाव अडमाणे इंदडाणस्स अदूरसामंतेणं वीइवयइ । तए णं अइमुत्तो कुमारे भगवं गोयमं अदूरसामंतेणं वीइवयमाणं पासइ, जेखेव भगवं गोयमे तेखेव उवागच्छइ, उवागच्छिता भगवं गोयमं एवं वयासी के ण भंते तुब्भे ? किं वा अडह ? ॥७॥

अर्थ—उस समय भगवान् गौतम पोलासपुर नगर मे उच्च नीच यावत् घरों मे भिक्षा के लिए घूमते हुए उस इन्द्र-

रथान्-दृष्ट्वाभूमिं ते न बहून् दूरं और न बहून् नमीग से अर्थात् कुछ दूर ने निकले । तत्र अतिमुक्त कुमार ने भगवान् गीतम को कुछ दूर में जानें देखा । देव कर वह भगवान् गीतम के पास आया । आकर भगवान् गीतम से बोला-भगवन् ! तत्र तत्रेण हे ? स्थितिम् त्वम ग्हे हे ? ॥३॥

मूल—तए गं भगवंं गोयमे अडभुत्तं कुमारं एवं त्रयासी-अग्हे णं देवाणुप्पिया । समणा निगंयां दुरियाममिया जाव वंभयारी, उच्चनीय जाव अडापो । ॥३॥

अं—नव भगवान् गीतम ने अतिमुक्त कुमार ने कहा-देवानुप्रिय । हम निगंय श्रमण हैं, इयसिमिति से युक्त तामा दग्गयं ता पावन करने वाले हैं । भिक्षा के लिए उच्च-नीच एव मध्यम कुलों में श्रमण कर रहे हैं ॥३॥

मूल—तए गं अडभुत्तो कुमारं भगवंं गोयमं एवं त्रयासी एद णं भंते ! तुब्भे जाणं अहं तुम्मं भिक्खं दयावेमि चिकट्टु भगव भगव गोयमं अंगुलीण् गेण्हइ, गेण्हत्ता जेणेत्र सए गिहं तेणेत्र उवागए ॥६॥

अं—नव अतिमुक्त कुमार ने भगवान् गीतम से कहा-भगवन् ! आओ, जिससे मैं तुम्हे भिक्षा दिलाऊँ, इस प्रकार तत्र कर भगवान् गीतम को उगली पकड़ी और उगली पकड़ कर अपने घर की ओर ले गया ॥६॥

मूल—तए गं सा मिरिद्वी भगवंं गोयमं एज्जमाणं पामइ, पामिचा हट्टुइ आसणाओ अब्भुट्ठेइ, पच्चभुट्ठिजा नेगोव भगवंं गोयमे तेणोय उवागया, भगवंं गोयमं तिक्रमुत्तो आयाहिणं पयाहिणं वंदइ, नमंसइ, पंदिता नमंमिजा चिट्ठेणं अमगपाणत्ताइमसाइमंणं पडिलामेइ, जात्र पडिविसज्जेइ ॥७॥

अं—इय नमय धनिमुक्त कुमार की माता श्रीदेवी ने भगवान् गीतम स्वामी को आते देखा । देखते ही वह भगव दोर पर गयी तो गई । जहाँ भगवान् गीतम थे वहाँ आई । भगवान् गीतम को तीन बार हाथ जोड़ कर तीन बार

आदक्षिण प्रदक्षिणा करके वन्दन और नमस्कार किया । वन्दन नमस्कार के पश्चात् विपुल अशन, पान, खादिस और स्वादिस आहार बहराया यावत् विदा किया ॥१०॥

मूल—तए गं से अइमुत्ते कुमारे भगवं गोयमं एवं वयासी—कहिं गं भंते ! तुम्हे परिवसह ॥११॥

अर्थ—उस समय अतिमुक्त कुमार ने भगवान् गौतम से इस प्रकार पूछा—भगवन् ! आप कहाँ रहते हैं ? ॥११॥

मूल—तए गं भगवं गोयमे अइमुत्तं कुमारं एवं वयासी—एव खलु देवाणुप्पिया ! मम धम्मयारिए धम्मोवएसए भगवं महावीरे आइकरे जाव संपाविउकामे इंहव पोलासपुरस्स वहिया सिरिवरो उज्जाणो आहा—पडिरूवं उगहं उग्गिण्हत्ता भंजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणो विहरइ, तत्थ गं अम्हे परिवसामो ॥१२॥

अर्थ—तब भगवान् गौतम ने अतिमुक्त कुमार से कहा—देवानुप्रिय ! मेरे धर्मचार्य, धर्मोपदेशक, भगवान् महावीर धर्मतीर्थ की आदि करने वाले यावत् निर्वाण के अभिलाषी, इस पोलासपुर नगर के बाहर श्रीवन नामक उद्यान में यथोचित-साधु के योग्य स्थान ग्रहण करके सयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरते हैं । उसी जगह हम भी रहते हैं ॥१२॥

मूल—तए गं से अइमुत्ते कुमारे भगवं गोयमं एव वयासी—गब्ध्वासिं गं भंते ! अहं तुम्भेहिं सद्धिं समणं भगवं महावीरं पायवंदए ?

‘अगसुहं देवाणुप्पिया !’ ॥१३॥

अर्थ—तब अतिमुक्त कुमार ने भगवान् गौतम से इस प्रकार कहा—भगवन् ! मैं आपके साथ श्रमण भगवान् महावीर के चरणों की वन्दना के लिए चलूँ ?

गीतम स्वामी ने उत्तर दिया—देवानुप्रिय ! जैसे तुम्हें सुख उपजे वंसा करो ॥१३॥

मूल—तए गं से अइसुत्रो कुमार भगवया गीयसेणं सद्धि जेणोत्र समणो भगवं महावीरिं तेणोत्र उवा-
गच्छः उवागच्छिता ममणं भगव महावीरं तिकसुत्रो आयाहिणं पयाहिणं वंडइ जाव पज्जुवासइ ॥१४॥

अर्थ—तब अतिमुक्त कुमार भगवान् गीतम के साथ श्रमण भगवान् महावीर के पास पहुँचा । वहाँ पहुँच कर उसने
भगवान् महावीर को तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा की, वन्दना की यावत् पयुपासना की ॥१४॥

मूल—तए गं भगवं गीयसे जेणोत्र समणो भगवं महावीरिं तेणोत्र उवागए जाव पडिदंसेइ, पडि-
दसिचा मंत्रमंणं तवसा अप्याणं भावमारो विहरइ ॥१५॥

अर्थ—तब भगवान् गीतम स्वामी जहाँ श्रमण भगवान् महावीर थे, वहाँ आए । जो आहार लाये थे, वह उन्हें
दिगचाया । यान् शयमन्तप ने जान्या को भावित करते हुए विचरने लगे ॥१५॥

मूल—तए गं ममणो भगवं महावीरिं अइसुत्तस्स कुमारस्स तीसे य धम्मकहा ॥१६॥

अर्थ—तब श्रमण भगवान् महावीर ने अतिमुक्त कुमार को और परियद् को धर्मोपदेश दिया ॥१६॥

मूल—तए ग मं अइसुत्रो कुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं मोच्चा निसम्म ढ्ढे, जं
नारं देवाणुपिया । अम्मपापियर अपुच्छामि, तए गं अहं देवाणुपियाणं अन्तिए जावपव्वयामि ॥१७॥

अर्थ—श्रमण भगवान् महावीर ने यमोंदण मुने के अनन्तर अतिमुक्त कुमार हर्षित हुआ, संसृष्ट हुआ और
देवों से पूछा—'मैं अपने माता-पिता ने पूछा है, तन्जान् में देवानुप्रिय के निकट परम्या रहण कहेंगे ॥१७॥

मूल — अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह ॥१८॥

अर्थ—तब भगवान् ने कहा—देवानुप्रिय ! जैसे सुख उपजे वैसा करो । विलम्ब मत करो ॥१८॥

मूल—तए णं से अइसुत्ते कुमारे जेणेव अम्मपियरो तेणेव उवागए जाव पव्वइत्तए ॥१९॥

अर्थ—तत्पश्चात् अतिमुक्त कुमार माता-पिता के पास आए, यावत् बोले—मुझे आज्ञा दीजिए, मैं दीक्षा ग्रहण करना चाहता हूँ ॥१९॥

मूल - अइसुत्तं कुमारं अम्मपियरो एवं वयासी-बाले सि णं तुमं पुत्ता ! असंबुद्धे सि तुमं पुत्ता !
किं णं तुमं जाणसि धम्म ? ॥२०॥

अर्थ—तब माता-पिता ने अतिमुक्त कुमार से कहा—हे पुत्र ! तू बालक है । हे पुत्र ! तू अबोध है । तू धर्म के विषय में क्या समझता है ? कुछ नहीं ॥२०॥

मूल—तए णं से अइसुत्ते कुमारे अम्मपियरं एवं वयासी-एवं खलु अम्मयाओ ! जं चेव जाणमि
तं चेव न याणामि, जं चेव न जाणामि तं चेव जाणामि ॥२१॥

अर्थ—तब अतिमुक्त कुमार ने माता-पिता से कहा—अहो माता-पिता ! जिसको मैं जानता हूँ, उसी को नहीं जानता और जिसे नहीं जानता, उसी को जानता हूँ ॥२१॥

मूल— तए णं अइसुत्तं कुमारं अम्मपियरो एवं वयासी-कहं णं तुमं पुत्ता ! जं चेव जाणसि तं
चेव न जाणसि जं चेव न जाणसि तं चेव जाणसि ? । २२॥

अहं-तव नाना-दिना ने अनिमुक्त कुमार से पूछा-तुव ! किस प्रकार तुम जो जानते हो वह नहीं जानते हो और कि कौन जानते हो जो जानते हो ? ॥२३॥

भूल-नए ग ने अहमुने कुमार अहं अहमापियरं एहां वयासी-जाणामि णं अहं अम्मयाओ ! जहा जाणं अम्म मरिअब्बां, न जाणामि अहं अम्मयाओ ! काहे वा, कहि वा, कहं वा केवचिरेण वा ! न जाणामि न अम्मयाओ ! केहिं कम्मयायणेहिं जीवा नेरइयतिरिखलोणियमणुस्सदेवसु उववज्जंति । जाणामि गं अम्मयाओ ! जहा मएहिं कम्मयायणेहिं जीवा नेरइय जाव उववज्जंति । एवं खलु अहं अम्मयाओ ! जं चेव जाणामि तं चेव न जाणामि, जं चेव न जाणामि तं चेव जाणामि । तं इच्छामि णं अम्मयाओ ! तुब्भेहिं अहमणुन्नाए जाव पव्वइत्तए ॥२३॥

अहं-तव अनिमुक्त कुमार ने उत्तर दिया-अहो माता-पिताओ ! मैं जानता हूँ कि जो जन्मा है वह अवश्य पड़ेगा परन्तु मैं यह नहीं जानता कि किस निमित्त ये, किस स्थान पर, किस प्रकार और कितने समय में मरेगा ! अहो माता पिता ! मैं यह नहीं जानता हूँ कि जीव किस कर्म से नरक, तिर्यक, मनुष्य और देव गति में उत्पन्न होते हैं, परन्तु मैं जानता हूँ कि जीव अपने हा वधे कर्म-वधतो ने नरकादि गति में उत्पन्न होते हैं अहो माता-पिता ! इस प्रकार मैं जिसे जानता हूँ उसे नहीं जानता हूँ और जिसे नहीं जानता हूँ उसे जानता हूँ । इस कारण अहो माता-पिता ! मैं आपकी सेवा प्राप्त कर याया परमिज होना चाहता हूँ ॥२३॥

भूल-नए गं अहमुने कुमार अहं अहमापियरो जाहे नो संचाएति वहुहिं आववणाहिं पणवणाहिं, तं इच्छामो चाया ! अगदिअममि राजमिंरिं पासित्तए ॥२४॥

अहं-तव अनिमुक्त कुमार के माता-पिता जब उसे बहुत बह कर एव समझा कर तथा समार के सुन और

सयमपालन मे होने वाले कष्ट बतला कर संसार के भोगों में लुभाने के लिए समर्थ न हुए, तब कहने लगे-हे पुत्र ! हम एक दिन के लिए भी तेरी राज्यश्री देखना चाहते है अर्थात् तुझे राजा के रूप मे देखना चाहते है ॥२४॥

मूल--तए णं अतिमुत्तो कुमारे अम्मपिउवयणमणुवत्तमारो तुसिणीए संचिड्डइ । २५॥

अर्थ--तब अतिमुक्त कुमार माता-पिता के वचन को मान देकर मौन रह गया ॥२५॥

मूल --अभिमेओ जज्ञा महावल्लम, शिक्खल्लमणं जाव साम्माइयमाइयाइं एव ऋारस अंग्गाइं अहिज्जइ अहिज्जत्ता इड्डइ वासाइं सामन्नपरियागं गुणरयणसंवच्छरं तवोकम्मं जाव विउले सिद्धे । २६।

अर्थ--जिस प्रकार भगवती सूत्र मे महाबल कुमार के राज्याभिषेक और दीक्षा का वर्णन है, उसी प्रकार यहाँ जानना चाहिए, यावत् दीक्षा धारण कर अनगार हुए । सामायिक से प्रारंभ कर ग्यारह अंग पढे । बहुत वर्षों तक संयम पाला । गुणरत्नसंबत्सर तप किया, यावत् विपुल पर्वत से सिद्धि प्राप्त की ॥२६॥

[भगवतीसूत्र शतक ५ उद्देशक ४ मे कहा है-उस काल और उस समय मे श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के भद्र एवं विनोत प्रकृति वाले अतिमुक्त अनगार एकदा महावृष्टि होने के बाद जगल गये । वहाँ अतिमुक्त मुनि ने पानी के बहते हुए प्रवाह को पाल बाँध कर रोका । फिर उस पानी मे पात्री रख कर कहने लगे-भेरी यह नाव तिरती है ! साथ के अन्य साधुओं ने यह खेल देखा और श्रमण भगवान् श्री महावीर स्वामी के पास आकर पूछा-अपका शिष्य अतिमुक्त मुनि कितने भव करके मोक्ष जाँगा ? भगवान् बोले-वह चरमशरीरी है-इसी भव से मोक्ष जाएगा । अतएव हे आर्यो ! तुम अतिमुक्त मुनि का निन्दाहीलना मत करो । अग्लानभाव से उसकी भक्ति करो-अन्नपानादि से वैयावृत्य करो । स्थविर भगवतो ने वैसा ही किया ।]

गुणरत्नसंवत्सर तप

(कोष्ठक और विधि)

तप दिन	पारणा	सर्वे दिन
३२	१६	३४
३०	१५	३२
२८	१४	३०
२६	१३	२८
२४	१२	२६
२३	११	२५
२०	१०	२३
२७	९	२३
२५	८	२०
२१	७	२७
	६	२५
	५	२४
	४	२३
	३	२०
	२	२१
	१	२०
	०	३२

विधि—प्रथम मास मे एकान्तर उपवास, दूसरे में बेले-बेले पारणा, तीसरे मे तेले-तेले पारणा, यावत् सोलहवे महीने में सोलह-सोलह उपवास के पारणा करे। दिन मे उत्कटासन से सूर्य की आलापना ले, रात्रि मे वस्त्र रहित होकर वीरासन से ध्यान करे। इसके सब दिन ४०८, पारणा दिन ७४ और सब दिन ४८२ होते है।

सोलहवां अध्ययन

मूल—उक्त्वेत्रञ्चो सोलसमस्स अल्फयणस्स । एवं खलु नंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणारसीए नयरीए काममहाद्यणे चेइए । तत्थ णं वाणारसीए अलक्खे णामं राया होत्था ॥१॥

अर्थ—सोलहवे अध्ययन का उत्क्षेप कहना चाहिए। श्रीसुधर्मा स्वामी बोले-हे जम्बू ! उस काल और उस समय मे वाणारसी नगरी मे काम-महावन नामक चैत्य था। वाणारसी नगरी मे अलक्ष नामक राजा राज्य करता था ॥१॥

मूल—तेणं कालेणं तेण समएणं समणे भगवं महावीरे जाव समोसरिए, विहरति परिसा णिग्गया ॥२॥

अर्थ—उस काल और उस समय मे श्रमण भगवान् महावीर का पदार्पण हुआ और काममहावन चैत्य में ठहर कर समय-तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे। भगवान् के दर्शन और वन्दन के लिए परिषद् निकली ॥२॥

मूल—तए णं अलक्खे राया इमीसे क्खाए लद्धे हट्टुह जहा कूणिए जाव पज्जुवासइ । ३॥

अर्थ—तब अलक्ष राजा को यह वृत्तान्त विदित हुआ तो वह हर्षिब और सत्तुष्ट हुआ। उववाईसूत्र में वर्णित कोणिक राजा के समान सम्पूर्ण साज सज कर वह दर्शनार्थ आया यावत् उपासना करने लगा ॥३॥

मूल—धम्मकदा ॥४॥

अर्थ—भगवान् ने धर्मकथा मुनाई ॥४॥

मूल—तए णं से अलकले राया समणस्स भगवओ महावीरस्स अंति ए जहा उदायणे तहा शिक्खंते;
गवरं नेट्टपुनं रज्जे अभिविचइ ॥५॥

अर्थ—नदरग्वान् अनदा राजा ने भगवतीमूत्र मे वणित उदायन राजा के समान श्रमण भगवान् महावीर के निकट
पत्र्या अंगीकार की । विगोना इतनी हे कि उदायन ने अपने भागिनिय (भाणेज) को राज्यभार सौंपा था, जब कि अनदा
ने अपने जेठ पुत्र को राज्यभार दिया ॥५॥

मूल—एक्काग्य अंणाइं अदिज्जइ, वहुवासाइं परियाओ, विउले सिद्धे ॥६॥

अर्थ—दीक्षा गद्ग करने के पञ्चान् अनदा मुनि ने ग्यारह अंगो का अध्ययन किया । बहुत वर्षों तक समय का
पास लिया, यावत् विगुमान पवंत ने निद्धि प्राप्त ही ॥६॥

सोलहवां अध्ययन समाप्त

षष्ठ वर्ग समाप्त



सप्तम वर्ग

मूल—जइ णं भंते ! ० सत्तमस्स वग्गस्स उक्खवेवश्री । जाव तेरस्स अज्झक्यणा पणत्ता; तंजहा—

नंदा तह नंदवई, नंदोत्तर नंदसेणिया चेव ।

मरुया सुमरुया महमरुया, मरुद्देवा य अट्टमा ॥१॥

भदा य सुभदा य, सुजाया सुमणाइया ।

भूयदिन्ना य बोद्धव्वा, सेणियमज्जाण नामाइं ॥२॥

अर्थ—श्री जम्बू स्वामी ने भगवान् सुधर्मा से निवेदन किया—भगवन् ! मैंने छठे वर्ग का अर्थ सुना । श्रमण भगवान् महावीर यावत् निर्वाणप्राप्त ने सातवे वर्ग का क्या अर्थ फरमाया है ? तब सुधर्मा स्वामी ने उत्तर दिया—श्रमण भगवान् महावीर ने सातवे वर्ग के तेरह अध्ययन कहे हैं । वे इस प्रकार हैं—(१) नन्दा (२) नन्दवती (३) नन्दोत्तरा (४) नंदसेना (५) मरुता (६) सुमरुता (७) महामरुता (८) मरुदेवी (९) भद्रा (१०) सुभद्रा (११) सुजाता (१२) सुमता और (१३) भूतदत्ता । यह तेरहों श्रेणिक राजा की रानियों के नाम हैं ॥१॥

मूल - जइ णं भंते ! तेरस्स अज्झक्यणा पणत्ता, पटमस्स णं भंते ! अज्झक्यणस्स समणेणं जाव संपचोणं के अट्टे पणत्ते ? ॥२॥

वर्ग—भगवत् । यदि मातृवै वर्ग के तेरह अध्ययन कहे हैं तो प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ? ॥२॥
 मूल—एवं खलु अंशु । नेगं कालिणं तेषं ममएणं रायगिहे ण्यरे, गुणमितिए चेइए, सेणिए राया,
 अगणओ ॥३॥

वर्ण—हे अन्ध ! उन काल और उस समय में राजगृह नामक नगर था । गुणगील चैत्य था । श्रेणिक राजा था ।
 उनका पत्नी नाम देना चाहिए ॥३॥

मुत्त—तस्म ण सेणियस्स रण्णो नंदा नामं देवी होत्था, वएणओ ॥४॥
 ः इण श्रेणिक राजा ती नन्दा नामक रानी थी वह सुकुमाल यावत् मुल्लपा थी ॥४॥
 मूल—नामी ममोमडे, परिमा णिगया ॥५॥

वर्ण—अमग भगवान् महावीर स्वामी पधारें । परिपइ वमं ण्था मुत्तने के लिए निकली ॥५॥

गुल—नए णं मा गुंदा देवी इमीमे कइए लइइडा ममाणी इडा, कोइ वियपुरिसे सदावेइ, सदावेत्ता
 जाय गार इडा पउमावेइ, जाय एक्कारय अंगाइं अहिडिज्जत्ता वीसं वासाइं परियाय पाउणित्ता जाव सिद्धा ।
 एवं नेरम वि देवी प्रो गंदागमेणं णेयव्वाओ । निकखेवओ ॥६॥

वर्ण—त नन्दा देवी भगवान् के आगमन का वृत्तान्त सुन कर हर्षित हुई । तीदुम्बिक पुरुषों को बुलवा कर
 भणित कर गवाया । पचासी रानी ही तरह भगवान् के निकट गई । वसकथा सुनी । श्रेणिक राजा की अनुमति
 के बाद उस अध्ययन पूर्ण हुआ ।

वर्ण—अमग नन्दा देवी ता ख्यन णिया, उनी प्रणार तेग्घो रानियों के तेरह अध्ययन कहना चाहिए । यहाँ
 मातृवै वर्ग की विशेष-उपनाम भगवता चाहिए ॥६॥

समम वर्ग समाप्त

अठम वर्ग

मूल—जइ गं भंते ! अट्टमस्स वग्गस्स उक्खेवत्ती, जाव गावरं दस्स, अज्झयणा पणत्ता, तंजहा—

काली सुकाली महाकाली कण्हा सुकण्हा महकण्हा ।

वीरकण्हा य बोद्धव्वा, रामकण्हा तहेव य ।'

पिउसेणकण्हा नवर्मा, दसमी महासेनकण्हा य ॥१॥

अर्थ—अहो भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर ने सातवे वर्ग का यह अर्थ कहा है तो आठवे वर्ग का क्या अर्थ कहा है ? इस प्रकार का उत्क्षेप कहना चाहिए ।

सुधर्मा स्वामी ने कहा—हे जम्बू श्रमण भगवान् महावीर ने आठवे वर्ग के दस अध्ययन कहे है, यथा—(१) काली (२) सुकाली (३) महाकाली (४) कृष्णा (५) सुकृष्णा (६) महाकृष्णा (७) वीरकृष्णा (८) रामकृष्णा (९) प्रियसेनकृष्णा और (१०) महासेनकृष्णा । दस अध्ययनों में इन दस रानियों का वर्णन है ॥१॥

मूल—जइ गं भंते ! अट्टमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पणत्ता, पठमस्स अज्झयणस्स के अट्टे पणत्ते ? ॥२॥

अर्थ—उम्हूँ न्यामी ने पुनः प्रश्न किया—भगवन् ! यदि आठवें वर्ग के इस अध्ययन कहे हैं तो प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ होता है ? ॥३॥

मूल एवं खनु उंनु ! तेगं कालेगं तेणं समएणं चपा नामं नयरी होत्था, पुएणभदे चेइए, सेगीए राया । ३ ।

अर्थ—तीनुवर्गों न्यामी ने उन्तर दिया—हे जम्हूँ उम काल और उस समय में चम्पा नाम की नगरी थी । उसके उन्तान गंग में एकभद्र नामक चतुर्थ था । कोणिक नामक राजा राज्य करता था ॥३॥

मूल —तन्थ गं चपाए गयरीए सेगीयस्स रणो भज्जा, कोगीयस्स रणो चुल्लमाउया काली नामं देवो रोन्था, वएणओ । उदा गदा जाव सामाइयमाइयाइं एक्कारस्स अंगाइं अहिज्जइ, वहुहिं चउत्थ जाव अएणगं भावेमाणा विहरइ । ४ ।

अर्थ—चम्पा नगरी में कोणिक राजा की भार्या और कोणिक राजा की छोटी माता काली नामक देवी थी । उन्तान गंग में नगरी बना चोना चाहिए । जैना नन्दा रानी का अधिकार कहा, वैसा ही इसका भी जानना चाहिए । गावत् देवा गन्त कर, नामाणिक ने ने कर ग्यान् उंगो का अध्ययन किया, बहुत-से चतुर्थभक्त पठभक्त आदि तारुचरण से तथा नगरी में आस्था को भावित करने की हुई विचरने लगी ॥४॥

मूल—तए गं या कानी अज्जा अएणया कयाइं जेणव अज्ज चंदणा अज्जा तेणव उजागया, एवं रायाभी—इह्मि गं अउनाओ । तुभएणुएणाया नमाणी रयणावलिं तवोकम्मं उवसंपडिज्जाणं विहरित्ताए । 'अदा मुहं' ॥५॥

अर्थ—काली आर्या ने किसी समय आर्य चन्दना आर्थिका के समीप जाकर कहा—‘अहो आर्याजी ! आपकी आज्ञा हो तो मैं रत्नावली तप अगीकार करके विचरना चाहती हूँ ।

तब चन्दनबाला आर्थिका ने कहा—जैसे सुख उपजे वैसा करो ॥५॥

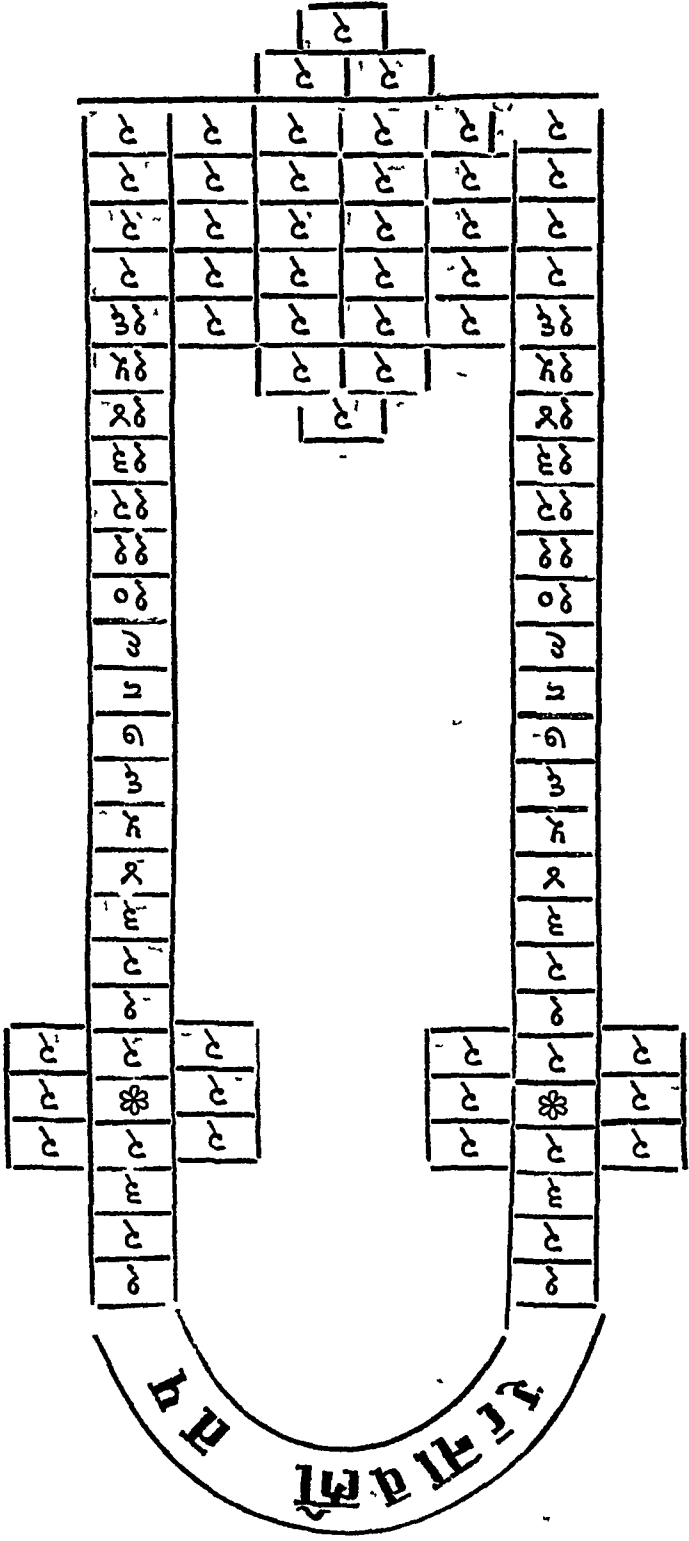
मूल—तए णं सा काली अज्जा अज्ज चंदणाए अब्भुण्णया समाणी रयशावलि तवोकम्मं उव-संपज्जिताणं विहरइ । तंजहा—चउत्थं करेइ, चउत्थं करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारेत्ता छड्डं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारेत्ता अट्ठमं करेइ करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारेत्ता अट्ठ छड्डाहं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारेत्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारेत्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, दुवालसमं करेइ, सव्वकाम०, चौदसमं करेइ, सव्व०, सोलसमं करेइ, सव्वकाम०, अट्ठारसमं करेइ, सव्वकाम०, बीसइमं करेइ, सव्वकाम०, बावीसइमं करेइ, सव्वकाम०, चउवीसइमं करेइ, सव्वकाम०, छब्बीसइमं करेइ, सव्वकाम०, अट्ठावीसइमं करेइ, सव्वकामगुण०, तीसइमं करेइ, सव्वकाम०, षत्तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारेत्ता चोत्तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकाम० पारेइ, पारित्ता चउत्तीसं छड्डाहं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ ॥

चउत्तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता षत्तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकाम० पारेइ, तीसइमं करेइ, सव्वकामगु०, अट्ठाइसमं करेइ, सव्वकाम० पारेइ, छब्बीसइं करेइ, सव्वकाम०, चोवीसइमं करेइ, सव्वकाम०, बावीसइमं करेइ, सव्व०, बीसइमं करेइ, सव्वकाम०, अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्व-

कामगुण०, गोलपमं करेइ, मव्वकाम०, चउडसमं करेइ, सव्वकाम० चारसमं करेइ, सव्वकाम०, दसमं करेइ, मव्वकामगुणियं पारेइ, अइमं करेइ, सव्वकाम०, छड्ड करेइ, करिच्चा सव्वकाम० पारेइ, चउत्थं करेइ, करिच्चा मव्वकाम०, अइ छड्डाइ करेइ, करिच्चा सव्वकामगुणियं पारेइ, अइमं करेइ, सव्वकाम० पारेइ, छड्ड करेइ, करिच्चा मव्वकाम०, चउत्थं करेइ, करिच्चा सव्वकामगुणं पारेइ ॥६१

अर्थ—तेच कानी नामक आधिका ने आर्या चन्दनवानाजी आधिका की आज्ञा प्राप्त करके रत्नावली तप अंगीकार लिया । पर उन प्रकार-चतुर्वेभक्त (एक उपवास) किया, चतुर्वे भक्त करके सर्वकामगुणित (सब प्रकार के रस भोगने की विधि से ही कृपा) पारणा किया, पारणा करके पष्ठ भक्त (बैला) किया, बैला करके सर्वकामगुणित पारणा किया, फिर बैला किया, बैला करके सर्वकामगुणित पारणा किया, आठ बैले किये, फिर पारणा किया, चतुर्वेभक्त किया, पारणा किया, पारणा करके पारणा किया, दशमभक्त (चौला) करके पारणा किया, द्वादशमभक्त (पंचासा) करके पारणा किया, चौदहभक्त (छह उपवास) करके पारणा किया, पौडशभक्त (सात उ.) करके पारणा किया, दशमभक्त (बाठ उपवास) करके पारणा किया, त्रीनभक्त (नौ उपवास) करके पारणा किया, त्रयोविंशभक्त (दश उपवास) करके पारणा किया, चौबीसभक्त (गारह उपवास) करके पारणा किया, छत्तीसभक्त (त्रारह उपवास) करके पारणा किया, पचासभक्त (पेस उ.) करके पारणा किया, तीनभक्त (चौदह उपवास) करके पारणा किया, चत्तीसभक्त (पन्द्रह उ.) करके पारणा किया, चौतीसभक्त (नौनग उपवास) करके पारणा किया, फिर चौतीस पष्ठभक्त (बैले) किये, तत्पश्चात् पचासभक्त (पेस उ.) करके पारणा किया, फिर पन्द्रह उपवास करके पारणा किया, उमी प्रकार चौदह उपवास करके, पचास उपवास करके, ग्यारह उपवास करके, दस उपवास करके, नौ उपवास करके, आठ उपवास करके, दो उपवास करके, चार उपवास करके, तीन उपवास करके, दो उपवास करके, और पचास उपवास करके पारणा किया । तत्पश्चात् आठ बैले किये, फिर अष्टमभक्त, पष्ठभक्त और चतुर्वेभक्त

करके पारणा किया । (इसमें सब पारणा सर्वकामगुणित होते हैं) ॥६॥
रत्नावली तप का कोष्टक इस प्रकार है—



(१) स्नानाधी तप ही एक परिषाडी के तमोदिन ३४८, पारणक दिन ८८, मत्र महीने १५ और दिन २२ होते हैं। चार परिषाडियों में ५ वर्ष, २ मास, २८ दिन लगते हैं।

(२) मुसाफी शरियात में कनकावली तप लिया। दोनो में अन्तर यह है—स्नानावली तप में दोनों फूलों की जगह ३३ बंधे हैं। स्नानावली में उनकी जगह तेला किया जाता है। कनकावली तप के तमोदिन ४३४, पारणदिन ८८ हैं। मत्र १० महीने और १२ दिन होते हैं। चारों परिषाडियों में ४ वर्ष, ६ महीने, १८ दिन लगते हैं।

मूल—एवं तुलु एना मयगावलीए तवोरुम्मम्म पडमा परिवाडी. एगेणं संबच्छेरुणं, तिहिं मासेहिं. चारोमाए प्रदोरचोदिं अदागुचं जाव आगांहिया भवति ॥७॥

अर्थ—स्नानाधी तप ही यह प्रथम परिषाडी है। उसके करने में एक वर्ष, तीन मास और चाईन अहोरात्र (दिन रात) लगते हैं। उस प्रकार मूल के अनुसार प्रथम परिषाडी ही आराधना होती है ॥७॥

लल—तयागंतर च गं दोचाए परिवाडीए चउत्थं करेडि, करिचा विगइवज्जं पारेड, परिचा छड्डं करेड, परिचा विगइवज्जं पारेड, जहा पडवाए परिवाडीए तदा वीयाए वि, यवरं सब्बत्थ पारणाए विगइवज्जं पारे नि, नाम आगांहिया भवइ ॥८॥

अर्थ—प्रथम परिषाडी पूर्ण करने के पश्चात् काली नामक आर्या ने दूसरी परिषाडी आरभ ली। उस दूसरी परिषाडी में चतुर्भिन्नक लिया, चतुर्भिन्न करके विकृतिहीन (दुग्ध, दही, घी, तेल आदि विगय रहित) पारणा किया, फिर पडवरात किया और उसी प्रकार अर्थात् विगयरहित पारणा किया। उस तरह पहली परिषाडी में जिन क्रम से तपस्या ली ली, उसी क्रम से दूसरी परिषाडी में भी तपस्या ली। विशेषता यही कि उस परिषाडी में सब पारणा विगय रहित पारणा पाणि। उस प्रकार स्नानाधी तप की दूसरी परिषाडी ही मूनागुगार आराधना की जाती है ॥८॥

मूल—तयाणंतरं च णं तच्चाए परिवाडीए चउत्थं पारेइ जाव आराहिया भवइ ।६।
 अर्थ—दूसरी परिपाटी पूर्ण हो जाने पर तीसरी परिपाटी आरंभ की । उसमें सर्वप्रथम चतुर्थभक्त किया, फिर पष्ठभक्त किया, इत्यादि सब तपस्या प्रथम परिपाटी के क्रमानुसार की । विशेषता यह कि दूसरी परिपाटी में विगय का त्याग किया था और इस परिपाटी में निर्लेप (जिसका लेप न लगे) आहार से पारणा किया ॥६॥

मूल—एवं चउत्था परिवाडी, नवरं सव्वपारणए आर्यंबिलं पारेइ, सेसं तं चेव । गाहा—

पढमंमि सव्वकामं, पारणयं विइयए विगयवज्जं ।
 ततियंमि अलेवाडं, आर्यंबिलओ चउत्थंमि ॥१०॥

अर्थ—इसी प्रकार चौथी परिपाटी में तपस्या की, परन्तु इसमें प्रत्येक पारणा में आर्यंबिल किया । शेष सब क्रम प्रथम परिपाटी के समान समझना चाहिए । गाथा का अर्थ—प्रथम परिपाटी में सर्वकामगुणित पारणा, दूसरी में विकृति-वर्जित, तीसरी में निर्लेप और चौथी में आर्यंबिल से पारणा किया जाता है ॥१०॥

मूल—तए णं सा काली अज्जा तं रयणावल्लि तवोकम्मं पंचहि भंवच्छरेहि दोहिं य मासेहि अट्ठा-
 वीसाए य दिवसेहि अहासुचं जाव आराहेत्ता जेणेव अज्ज चंदणा अज्जा तेणेव उवागच्छह, अज्ज चंदणं च
 वंदति नमंसति वंदित्ता नमंसित्ता बहूहि चउत्थ जाव अप्पाणं भावेमाणा विहरति ॥११॥

अर्थ—तब काली आर्यिका रत्नावली तप की पाँच वर्ष, दो मास और अठईस दिनों में शास्त्रानुसार आराधना करके, जहाँ आर्य चन्दना आर्यिका थी वहाँ गई । चन्दना आर्यिका को वन्दन-नमस्कार किया । वन्दना-नमस्कार करके बहुत-से उपवास बेला आदि करके यावत् आत्मा को भावित करती विचरने लगी ॥११॥

मूल—तए गं मा काली अज्ञा तेणं उरालेणं जात्र धम्मणिमंतए जाया यावि होत्था, से जहा इंगानमगडेइ वा जात्र हुयासणेइ वा भासरासिपलिच्छिण्णा तुवेणं तेएणं तवतेयमिरीए अईव उवसोभेमाणी २ चिट्ठे ॥१२॥

अर्थ—काली आर्या की उन उदार-प्रधान तपस्या के कारण यावत् नस-नस दिखाई देने लगी-वह अत्यन्त कृश और दुर्बल हो गई। जैसे कौयलों ने भरी गाड़ी जब चलती है तो कड़-कड़ गन्ध करती है, उसी प्रकार उनके शरीर की दृष्टिसे कड़कड़ाने लगी। मगर वह आर्या तपस्या के तेज से प्रज्वलित अग्नि के समान देदीप्यमान थी। जैसे राख से उसी तरह अग्नि प्रदीप्त रहती है, उसी प्रकार वह आर्या भी देदीप्यमान थी ॥१२॥

मूल—तए गं तोसे कालीए अज्ञाए अणया कयाइ पुव्वरत्त वात्तकालममयंसि अयमज्झत्थिए जहा नंदयस्स, जहा जात्र अत्थि से उट्ठाणे जात्र पुरिसक्कारपरक्कमे जात्र से सेयं कल्लं जात्र जलंते अज्ज-नंदण प्रज्जं आपुच्छिणा, अज्जचंदणाए अज्जाए अब्भणुण्णाए समाणीए संलेहणा भूमणा आराहणा भत्त-पाणपडियाइअग्ने कलं अणवकल्पमाणं विहत्तिए त्तिक्कट्टु एवं संपेहिता कल्लं जेणेव अज्जचंदणा अज्जा तेणेव उवागच्छड, उवागच्छिता अज्जचंदणं अज्जं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एव वयासी-इच्छामि ए अज्जाओ ! तुव्भेहिं अब्भणुण्णाया ममाणी मंलेहणा जात्र विहरत्तिए ।

‘अद्रामुहं’ ॥१३॥

अर्थ—अज्ञान-आर्या को किसी समय अर्थ राशि के पञ्चाव धर्म जागरण करने हुए भगवतीसूत्र से संबन्धित अज्ञान-मूर्ति के समान विचार उत्पन्न हुआ। यावत् गहाँ तक भरे शरीर में शक्ति है, उत्थान, कर्म, वन, वीर्य,

पुरुषकार और पराक्रम है, तब तक, प्रातःकाल होते ही आर्यचन्दना आर्यिका से पूछ कर, उनकी आज्ञा प्राप्त करके अन्तिम आराधना रूप सलेखना ग्रहण करके, आहार-पानी का परित्याग करके, मृत्यु की कामना न करते हुए विचरना मेरे लिए कल्याणकारी है। इस प्रकार विचार करके, प्रभात होने पर, वह आर्य चन्दना आर्या के पास गईं। वहाँ जाकर उन्हें वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके कहा-अहो आर्यिके ! आपकी अनुमति प्राप्त करके मैं सलेखनाव्रत गहण करके विचरना चाहती हूँ।

तव चन्दनवाला आर्यिका ने कहा-जैसे तुम्हें सुख उपजे वैसा करो ॥१३॥

मूल—तएणं सा काली अज्जा चंदणाए अब्भणुरणया समाणी संलेहणा भूसिया जाव विहरइ । १४।

अर्थ—तत्पश्चात् चन्दना आर्यिका की अनुमति प्राप्त होने पर काली आर्या ने सलेखना का सेवन किया और यावत् काल की आकाक्षा न करती हुई विचरने लगी ॥१४॥

मूल—सा काली अज्जा अब्जचंदणाए अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जिता बहुपडिपुण्णाइं अट्ट संवच्छराइं सामणपरियागं पाउण्णि चा मासियाए संलेहणाए अप्पाणं भूसिचा सट्ठि भत्ताइं अणसणाए छेदिचा जस्सट्टाए कीरइ जाव चरिमुस्सासनीसासेहि सिद्धा ॥१५॥

अर्थ—काली आर्या ने आर्य चन्दना के निकट सामायिक से लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया, पूरे आठ वर्षों तक साध्वीपर्याय का पालन किया, एक मास की सलेखना की, अनशन से साठ भक्तों का छेदन किया और अन्त में जिस प्रयोजन के लिए मुण्डित हुई थी, उसे सिद्ध किया, यावत् चरम उच्छ्वास-निश्वास में सिद्ध हुई ॥१५॥

प्रथम अध्ययन समाप्त



मूल—उत्सवयो वीर्य अरुणस्य । एवं खलु बन्धु ! तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपाणामं गयरी होत्या । पूरणभदे चेष्ट, कोलिण राया । तत्य णं सेणियस्स रणो भज्जा कोणियस्स ररणो बुल्ले-माउया मुकालीनामं देवी नेत्या । जहा काली तदा मुकाली वि शिखंतता जाव बहुहिं चउत्य जाव भावेमाणा विहरइ ॥१॥

अर्थ—इससे पद्यरत्न का उत्प्रेय मुधर्मा स्वाधी ने कहा है जम्हू ! उस काल और उस समय मे चम्पा नामक नगरी थी । पूरणभट्ट नामक चैत्य था । कोणिक नाम का राजा था । वहाँ श्रेणिक राजा की पत्नी और कोणिक राजा की नौदो भावा मुलती नाम की रानी थी । जिस प्रकार काली रानी ने दीक्षा ग्रहण की, उन्ही प्रकार मुकाली ने भी । यावत् मृत्यु-ने उभयान वेना आदि नरस्वरण एव समय मे आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगी ॥१॥

मूल—तए णं मुकाली अज्जा अवाया कयाइ जेणेव अज्जचंदणा अज्जा जाव इच्छामि णं अज्जो ! तुभेहिं पबमणुजाया समाणी कणगावलीतवोक्कम्मं उवमंपडिज्जाणं विहरित्तए । एवं जहा रयणावली तथा कणगावली, नवरं निगु ठाणेमु अट्टमाइं करेइ जहा रयणावलीए छट्ठाइं ॥२॥

अर्थ—गणगाय एक बार किसी समय मुलती आर्या जहाँ चन्दनवाला आर्या थी वहाँ गई और बन्धना-नगरकार मरने लगे लगी-गारती जाना दो तो मैं तनलवनी तप बंगीकार करना चाहती है । जिस प्रकार रत्नावली तप कहा

हे, उसी प्रकार कनकावली तप भी कहना चाहिए । विशेषता यह है कि रत्नावली तप मे तीन जगह जहाँ षष्ठभक्त कहे है, वहाँ कनकावली मे अष्टभक्त (तेला) कहना चाहिए; अर्थात् प्रथम स्थान में आठ बेलों की जगह आठ तेल, तप के मध्य मे चोतीस बेलो की जगह चौतीस तेल और तोसरे स्थान मे आठ बेलों को जगह आठ तेल कहना चाहिए ॥२॥

मूल—एक्काए परीवाडोए संवच्छरो, पंच मासा, वारस अहोरत्ता । ३॥

अर्थ—इस तप को एक परिपाटी मे एक वर्ष पाँच मास और बारह अहोरात्र लगे ॥३॥

मूल—चउण्हं पंच वरिसा, नव मासा, अड्डारस दिवभा, सेसं तहेव ।

नव वासाइं परियात्रो जात्र सिद्धा ॥४॥

अर्थ—कनकावली तप की चारो परिपाटियों मे पाँच वर्ष, नौ मास, अठारह दिन लगे । शेष सब कथन पूर्ववत् समझना ।

सुकाली आर्या नौ वर्ष तरु सयम पाल कर यावत् सिद्ध हुई ॥४॥

द्वितीय अध्ययन समाप्त

तृतीय अध्ययन



मूल—एवं महाकाली वि, खवरं खुड्डागसीहनिककीलियं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ, तंजहा-

चउत्थं करेइ, करिचा सव्वकामगुणियं पारेइ, परिचा छड्डं करेइ, करिचा सव्वकामगुणियं पारेइ, पारिचा चउत्थं करेइ, करिचा सव्वकाम०, अट्टमं करेइ, करिचा सव्वकामगु०, छड्डं करेइ, करिचा सव्वकाम०, दसमं करेइ, करिचा मव्वकाम०, अट्टमं करेइ, करिचा मव्वकाम०, दुवालममं करेइ, करिचा सव्वकाम०, दसमं करेइ करिचा मव्वकाम०, चउदसमं करेइ, करिचा सव्वकाम०, दुवालसमं करेइ, करिचा सव्वकाम०, सोलसमं करेइ, मव्वकाम०, चउदसमं करेइ, सव्वकाम०, अट्टारसमं करेइ, सव्वकाम०, सोलसमं करेइ, मव्वकाम०, अट्टारसमं करेइ, सव्वकाम०, वीसइमं करेइ, सव्वकाम०, सोलसमं करेइ, सव्वकामगु०, अट्टारसमं करेइ, मव्वकाम०, चउदसमं करेइ, मव्वकाम०, सोलसमं करेइ, सव्वकाम०, वारसमं करेइ, मव्वकाम०, चोदसमं करेइ, मव्वकाम०, दसमं करेइ, सव्वकामगु०, दुवालसमं करेइ, सव्वकाम०, अट्टमं करेइ, मव्वकाम०, पारेइ, अट्टमं करेइ, सव्वकाम०, चउत्थं करेइ, मव्वकाम०, पारेइ, छड्डं करेइ, सव्वकाम०, चउत्थं करेइ, सव्व० पारेइ ॥१॥

पिं—इती प्रथम मटाहाती रानी ता भी अधिकार जानना । विशेष यह है कि उमने लघुनिहनिष्क्रीडित तप श्लोकार किया, यत्र-वर्षायाम चतुर्थभक्त किया, सब प्रकार के स्नोपभोग कर पारणा किया, फिर पठभक्त किया, सोलसमं किया, फिर चतुर्थभक्त किया, पारणा किया, अष्टमभक्त किया, पारणा किया, पठभक्त करके पारणा किया, अष्टमभक्त किया, पारणा किया, अष्टमभक्त करके पारणा किया, दशमभक्त करके पारणा किया, सोलसमं करके पारणा किया, द्वादशभक्त करके पारणा किया, पौण्ड्रभक्त करके पारणा किया, सोलसमं करके पारणा किया, पौण्ड्रभक्त करके पारणा किया, वीगभक्त करके

पारणा किया, अष्टादशभक्त करके पारणा किया, बीसभक्त करके पारणा किया, षोडशभक्त करके पारणा किया, अष्टा-दशभक्त करके पारणा किया, चौदहभक्त करके पारणा किया, षोडशभक्त करके पारणा किया, द्वादशभक्त करके पारणा किया, चौदहभक्त करके पारणा किया, दशभक्त करके पारणा किया, द्वादशभक्त करके पारणा किया, अष्टमभक्त करके पारणा किया, चतुर्थभक्त करके पारणा किया, दशमभक्त करके पारणा किया, षष्ठभक्त करके पारणा किया, अष्टमभक्त करके पारणा किया, चतुर्थभक्त करके पारणा किया, षष्ठभक्त करके पारणा किया और अन्त में चतुर्दशभक्त करके पारणा । इस प्रकार तपस्या करने पर इस व्रत की पहली परिपाटी पूर्ण होती है ॥१॥

मूल — तहेव चत्वारि परिवाडीश्रो । एक्काए परिवाडीए छम्मासा सत्त य दिवसा; चउण्हं दो वरिसा अट्ठावीस दिवसा । नाव सिद्धा ।२॥

अर्थ—इसी प्रकार चारों परिपाटी समझना चाहिए । दूसरी परिपाटी मे विगयवर्जित पारणा, तीसरी में निर्लेप पारणा और चौथी परिपाटी मे आयबिल से पारणा किया; ऐसा कहना चाहिए । इस तपस्या की एक परिपाटी में छह मास और सात दिन लगे । चारों परिपाटियों मे दो वष और अट्ठाईस दिन लगे । अन्त मे महाकाली आर्या ने संलेखना धारण कर यावत् सिद्धि प्राप्त की ॥२॥

लघुसिंहनिष्क्रीडित तप कोष्टक

चतुर्थं अध्ययन



मूल— एवं कथा वि, शवरं महालयं सीहनिष्क्रीलियं तवोकर्मं; जहेव खुड्डागं, शवरं चोतीसइमं जाव नेयव्वं, तेहेव ज्जसारेयव्वं ॥१॥

अर्थ—इसी प्रकार कृष्णा रानी का वृत्तान्त भी जानना चाहिए। यावत् दीक्षा धारण करके कृष्णारानी ने महासिंह निष्क्रीडित तप किया। जैसा लघुसिंह निष्क्रीडितव्रत कहा है, वैसा ही महासिंह निष्क्रीडित व्रत भी जानना चाहिए। इसमें विशेषता यही है कि लघुसिंह निष्क्रीडित तप में वीसभक्त (६ उपवास) तक तपस्या करके वापिस फिरते हैं, किन्तु इसमें चौतीसभक्त (१६ उपवास) करके पीछे फिरते हैं। शेष पूर्वोक्त प्रकार ही घटाना चाहिए ॥१॥

मूल—एक्काए परिवाडीए वरिसं, छ मासा अट्टारस य दिवसा, चउण्हं छ वरिसा, दो मासा, वारस य अशोरत्ता, सेसं जहा कालीए जाव सिद्धा ॥२॥

अर्थ—इस तपस्या की एक परिपाटी में एक वर्ष, छह महीने और अठारह दिन लगते हैं। चारों परिपाटियों में छह वर्ष, दो मास तथा बारह दिनरात लगते हैं। शेष वृत्तान्त काली रानी के समान जानना, यावत् सिद्ध हुई ॥२॥

चतुर्थं अध्ययन समाप्त



सम — एवं गुरुणा वि. गवरं गत्तमत्तमियं भिक्खुपडिमं उवंगपिज्जिजाणं विहरइ । पढमे सत्तए एकंकेकं भोग्गस्स दत्ति पडिगाहेइ एक्केक्कं पाण्यस्स, दोब्बे सत्तए दो दो भोग्गस्स दो दो पाण्यस्स पडिगाहेइ, तज्जे सत्तए तिग्गिण भोग्गस्स तिग्गिण पाण्यस्स, चउप्ये चउ, पंचमे पंच, छडे छे, सत्तमे सत्तए मत्तद्वीथी भोग्गस्स पडिग्गाहेत्ति; सत्त पण्यस्स ॥२॥

अर्थ—उनी गजर गुरुणा रानी ता अधिकार जानना चाहिए । विशेषता यह है कि-उन्ने मत्त-मत्तमिता नामक भिक्षुप्रतिमा अंगीकार की । क्या-क्या नाम दिन तक मदेव एक दिन आहार की ओर एक दत्ति पानी की गहन थी । इनके मानक से-मान रित-दो दत्ति आहार की ओर दो दत्ति पानी की गहन थी । तीसरे मत्तक में तीन दत्ति आहार की ओर तीन पानी की गहन थी । उनी प्रकार चौथे मत्तक में चार-चार दत्तियां, पांचवें में पांच-पांच दत्तियां, छठवें में छह दत्तियां और सप्तवें में सात दत्ति आहार और सात दत्ति पानी की गहन थी ॥२॥

मूल — एवं तल्लु गत्तमत्तमियं भिक्खुपडिमं एग्गपएणाए गइ'दिएदि एवेण य छन्नउएणं भिक्खवा - सण्णं गामसुत्तं ताव रागहिता जेणेव प्रज्जचंदणा अज्जा तेणेव उवापया ॥२॥

अर्थ—उस प्रकार मत्तमत्तमिता नामक भिक्षुप्रतिमा में उपासना अहोरात्र लगे । सब दत्तियां मिल कर एक नो पाने के हैं । उन दत्तियां का मूल के अनुसार मात्र आराधना करके अर्पण करने का नामक आराधना थी. वरतं गइ ॥२॥

मूल—अलज्ज चंदणं अज्जं वंदह नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी-इच्छामि णं अलज्जाओ !
 तुवमेहि अब्भणुएणाया समाणी अट्टइमियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विशरितए ।

‘अहासुहं’ ॥३॥

अर्थ—चन्दना आर्या के समीप पहुँच कर उनको वन्दना नमस्कार किया । वन्दना नमस्कार करके निवेदन किया—
 अहो आर्यिकाजी आपकी आज्ञा हो तो अष्टाष्टमिका नामक भिक्षुप्रतिमा अगीकार करके विचरूँ ।

चदन बाला आर्या ने कहा—जिस प्रकार सुख हो वैसा करो ॥३॥

मूल—तए णं सा सुवएहा अज्जा अज्जचंदणाए अब्भणुएणाया समाणी अट्टइमियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ । पढमे अट्टए एककेकं भोयणस्स दत्ति, एककेकं पाणगस्स दत्ति जाव अट्टमे अट्टए अट्टइ भोयणस्स दत्ति पडिगाहेइ, अट्ट पाणगस्स । एवं खलु एवं अट्टइमियं भिक्खुपडिमं चउसट्ठीए राहं—
 दिएहि दोहि य अट्ठसीएहि भिक्खवासएहि अहासुचं जाव आराहिचा नवनवमियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ ॥४॥

अर्थ—तत्पारचात् सुकुरणा आर्या ने आर्य चन्दना की आज्ञा प्राप्त कर अष्टाष्टमिका नामक भिक्षुप्रतिमा अगीकार की । इसमें पहले आठ दिनों तक एक दात आहार की और एक दात पानी की, दूसरे आठ दिनों तक दो दत्ति आहार की और दो दत्ति पानी की, यावत् आठवे आठ दिनों तक आठ दत्ति आहार की और आठ दत्ति पानी की ग्रहण की । इसकी आराधना में ६४ दिन लगे । सब दत्तियाँ दो सी अठासो हुई । इस प्रतिमा का सूत्र के अनुसार आराधन करके नवनवमिका नामक भिक्षुप्रतिमा अगीकार करके विचरने लगी ॥४॥

मूल—पठमं नवए एकैकं भोयणस्स दत्ति पडिग्गाहेइ, एकैकं पाणयस्स, जाव नवमे नवए नव दत्ति भोयणस्स पडिग्गाहेइ, नव पाणयस्स, एवं खलु नवमियं भिक्खुपडिमं एककासीए राइदिएदि, नउदि पंचोचरेदि भिक्खासएदि अहासुचं ॥३॥

अर्थ—नवमवमिता, नामक भिद्युप्रतिमा से प्रथम नौ दिनों में एक-एक दत्ति भोजन की ओर एक-एक दत्ति पानी ली ग्रहण की, यावत् नौवें नवक से नौ-नौ दत्तियां भोजन की ओर नौ-नौ पानी की ग्रहण की। इस प्रकार नव-वमिता नामक भिद्युप्रतिमा सप्त्यासी रात्रि-दिनो में तथा चार ली पचहत्तर दत्तियो में पूण हुई ॥३॥

मूल—दसदममियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जिचारणं विरट, पठमे दसके एकैकं भोयणस्स दत्ति पडिग्गाहेइ, एकैकं पाणयस्स, जाव दसमे दसए दस भोयणस्स दत्ति पडिग्गाहेइ, दस दस पाणयस्स। एवं खलु एवं दसदममियं भिक्खुपडिमं एकैकं राइदियसएणं अद्धच्छट्ठेहि भिक्खासएदि अहासुचं जाव आराहेइ ॥६॥

अर्थ—तत्पश्चात् दसदममिता नामक भिद्युप्रतिमा अंगीकार की। इसके प्रथम दस दिनों से एक-एक दिन भोजन ही और एक-दत्ति पानी की, यावत् दसवें दस दिनों में दस दत्तियां भोजन की ओर दस दत्तियां पानी की ग्रहण की। इस प्रतिमा ली आरापना से नौ दिन लगे। सब दत्तियां पचास कम छह नौ (५५०) हुईं। इस प्रकार नून के अनुसार यावत् इन प्रतिमा का आरापन किया ॥६॥

मूल—आरादिना बहुदि चउत्थ जाव मामद्धमास विविहत्थवोक्कमेणं अप्पाणं भावेमाणा विहरइ ॥७॥

अर्थ—दशदशमिका भिक्षुप्रतिमा का सेवन करने के बाद सुकृष्णा साध्वी बहुत-से उपवास, बेला, मासखमण, अर्धमासखमण आदि अनेक प्रकार के तप करके अपनी आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगी ॥७॥

मूल—तए णं सा सुकृष्णा अज्जा तेणं उरालेणं जाव सिद्धा ॥८॥ निकखेवओ ॥

अर्थ—तदनन्तर सुकृष्णा आर्या उस उदार तपस्या से दुर्बल हुई यावत् अन्त में सलेखना करके सिद्ध हुई ॥८॥
पांचवे अध्ययन का निक्षेप ।

पांचवां अध्ययन समाप्त

षष्ठ अध्ययन



मूल—एवं महाकृष्णा वि, एवरं खुड्डागं सव्वओमहं पडिमं उवंपज्जित्ताणं विहरइ; तंजहा-
चउत्थ करेइ. करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारेत्ता छडं करेइ, करेत्ता सव्वकामगु० पारेइ, पारेत्ता अट्टमं करेइ,
करेत्ता सव्वकाम० पारेइ, दसमं करेइ, सव्व० पारेइ, दुवालसमं करेइ, सव्वकाम०, पारेत्ता अट्टमं करेइ, करेत्ता
सव्वकाम०, पारित्ता दसमं करेइ, करेत्ता सव्वकाम०, पारेत्ता दुवालसमं करेइ, करेत्ता सव्वकाम०, पारित्ता

चउत्थं करेइ, करेचा मवकाम पारिचा छड्डं करेइ मवकाम०, पारिचा दुव लसमं करेइ, करिचा सव्वकाम०, पारेचा चउत्थं करेइ, करिचा सव्वकाम० पारेइ, पारेचा छड्डं करेइ, करिचा मव्वकाम०, पारेचा अड्डमं करेइ, करेचा मव्व०, पारिचा दममं करेइ, करिचा सव्व०, पारिचा छड्डं करेइ, करिचा सव्वकाम०, पारिचा अड्डमं करेइ, करिचा मव्वकाम०, पारेचा दममं करेइ, करिचा सव्वकाम०, पारिचा दुवलसमं करेइ, करिचा मव्वकाम०, पारिचा चउत्थं करेइ, करिचा सव्वकाम०, पारिचा दसमं करेइ, करिचा सव्वकाम०, पारिचा दुयानममं करेइ, करिचा मव्वकाम०. पारिचा चउत्थं करेइ, करिचा सव्वकाम०, पारेचा छड्डं करेइ, करिचा मव्वकाम०, पारिचा अड्डमं करेइ, करिचा मव्वकाम० पारेइ ॥११ ।

अर्थ—इसी प्रकार महाकृष्णा रानी भी दीक्षा धारण कर विचरने लगी । विनयेपता यह है कि महाकृष्णा ने छोटी नवंगोमन्त्रप्रतिमा की धाराधना का । उगली विधि इस प्रकार है—नवंगप्रथम चतुर्थभक्त लिया, सर्वकामगुणित पारणा लिया. जैसे ही पण्डभक्त करके पारणा किया, अष्टमभक्त करके पारणा किया, दशमभक्त करके पारणा लिया, द्वादशमभक्त करके पारणा किया, फिर अष्टमभक्त करके पारणा किया, दशमभक्त करके पारणा लिया, द्वादशमभक्त करके पारणा किया, चतुर्थभक्त करके पारणा किया, पण्डभक्त करके पारणा लिया, दशमभक्त करके पारणा किया, द्वादशमभक्त करके पारणा किया, फिर पण्डभक्त, अष्टमभक्त, दशमभक्त, पण्डभक्त, अष्टमभक्त, दशमभक्त, चतुर्थभक्त करके पारणा किया ॥११॥

भद्रप्रतिमा				
१	२	३	४	५
३	४	५	१	२
५	१	२	३	४
२	३	४	५	१
४	५	१	२	३
तपोदिन ७५, पारणा दिन २५				

मूल—एवं खलु एयं खुड्गासव्वञ्चोभद्दस्स तवोकम्मस्स पढमं परिवाडिं तिहिं मासेहिं, दसहिं दिवसेहिं, अहासुत्तं जाव आराहेत्ता दोच्चाए परिवाडीए चउत्थं करेइ, करित्ता विगइवज्जं पारेइ, । जहा रयणावलीए तथा एत्थ वि चत्तारि परिवाडीओ, पारणा तेहेव । चउण्हं कालो संवच्छरो, मासो दस य दिवसा, सेसं तेहेव जाव सिद्धा निक्खेवओ ॥२॥

अर्थ—यह लघु सर्वतोभद्र तप की पहली परिपाटी है । इसे तीन मास एवं दस दिन में शास्त्रानुसार यावत् आराधन करके दूसरी परिपाटी आरंभ की । उसमें चतुर्थभक्त आदि तपस्या प्रथम परिपाटी के अनुसार ही की, परन्तु पारणा

विद्यया विज्ञानं प्राप्नुयान् । तत्र तत्र परिपाटी मे निर्लेप आहार से और चौथी परिपाटी मे आर्यविल से पारणा किया । इस प्रकार जेसे रहनाव भी तप ओ चार परिपाटियो मे पारणा की विधि कही थी, वैसे ही यहाँ भी समझना चाहिए । इस तपस्या की चार परिपाटियों मे एक वर्ष, एक मास और दस दिन लगते हैं । गेप वृत्तान्त पूर्ववत् है, यावत् नुकुण्णा ने अन्त मे सले-गना करके निश्चि प्राप्त थी । छठे अध्ययन का निशेष ॥२॥

छठा अध्ययन पूर्ण

सातवां अध्ययन

मूल—एवं वीरकण्ठा वि, एवर् महालयं सव्यत्रोभदं तवोक्त्तम् उवशंपञ्जित्तानं विहरइ । तंजहा-चउन्नी करेइ, करित्ता सव्यगुणियं परेइ, पारेत्ता छड्डं करेइ, सव्यक्राम०, अट्टमं करेइ, करित्ता सव्यक्राम०, दसमं करेइ, करित्ता सव्यक्राम०, दुगालम करेइ, सव्यक्राम०, चोदसमं करेइ, सव्यक्राम० करेइ, सव्यक्रामगुण०, एका लया ॥१॥

अर्थ—वीरकण्ठा रानी ल भी वृत्तान्त इसी प्रकारका जानना चाहिए, यावत् दीक्षा वारण करके विविध प्रकार का तप करने लगी । इनमे विशेषता यह है ि-महान्तर्वतीभद्रप्रतिमा रूप ता अगी लार किया । वह इस प्रकार-सर्वप्रथम पुरुंभक्त किया, सर्व प्रकार के रस का उपभोग करके पारणा किया, इसी प्रकार पठभक्त करके पारणा किया, अष्टम-

भक्त करके पारणा किया, दशमभक्त करके पारणा किया, द्वादशभक्त करके पारणा किया, चौदहभक्त करके पारणा किया, सोलहभक्त करके पारणा किया । यह पहली लता है ॥१॥

मूल—दसमं करेइ, सव्वकामगुण०, दुवालसमं करेइ, सव्वकामगुण० चोइममं करेइ, सव्वकाम०, सोलसमं करेइ, सव्व०, चउत्थं करेइ, सव्वकाम०, छडं करेइ, सव्वकाम० अट्टमं करेइ, मव्व०, वीया लया ।२।

अर्थ—दशमभक्त करके पारणा किया, द्वादशमभक्त करके पारणा किया, चौदहभक्त करके पारणा किया, सोलहभक्त करके पारणा किया, चतुर्थभक्त करके पारणा किया, पष्ठभक्त करके पारणा किया, अष्टमभक्त करके पारणा किया । यह दूसरी लता है ॥२॥

मूल—सोलसमं करेइ, सव्वकाम गुणं०, चउत्थं करेइ, सव्वकाम०, छडं करेइ, सव्वकाम०, अट्टमं करेइ, सव्वकामगुण०, दसमं करेइ, सव्वकाम०, दुवालसमं करेइ, सव्वकाम०, चउद्दसमं करेइ, सव्वकाम० तइया लया ॥३॥

अर्थ—षोडशभक्त करके पारणा किया. चतुर्थभक्त करके पारणा किया, पष्ठभक्त करके पारणा किया, अष्टमभक्त करके पारणा किया, दशमभक्त करके पारणा किया, द्वादशमभक्त करके पारणा किया, चौदहभक्त करके पारणा किया, । यह तीसरी लता ॥३॥

मूल—अट्टमं करेइ, सव्वकाम०, दसमं करेइ, सव्वकाम०, दुवालसमं करेइ, सव्वकाम०, चोद्दसमं

करेड, मव्वकाम०, मोलसमं करेड, मव्वकाम०, चउत्थं करेड, सव्वकाम०, छडं करेड, सव्वकामगुणं पारड,
चउत्थी लया ॥४॥

अर्थ—अट्टमभक्त करे पारणा किया, दगमभक्त करे पारणा किया, द्वादशमभक्त करे पारणा किया, चौदहभक्त
करे पारणा किया, मोनहभक्त करे पारणा किया, चतुर्थभक्त करे पारणा किया, पण्डभक्त करे पारणा किया, यह
चौथी बात ॥४॥

मुन — चउत्थमं करेड, मव्वकाम०, मोलसमं करेड, मव्वकाम०, चउत्थं करेड, मव्वकाम०, छडं
करेड, मव्वकाम०, अट्टमं करेड, सव्वकामगु०, दगम करेड, सव्वकाम०, दुवालसमं करेड, मव्वकाम०,
पचमं लया ॥५॥

अर्थ—चतुर्थमभक्त करेके मव्वकामगुणित पारणा किया, पौण्डमभक्त करेके पारणा किया, चतुर्थभक्त करेके पारणा
किया, पण्डभक्त करेके पारणा किया, अष्टमभक्त करेके पारणा किया, दगमभक्त करेके पारणा किया, द्वादशमभक्त करेके
पारणा किया, यह पांचवीं बात ॥५॥

मुन — छडं करेड, मव्वकाम०, अट्टमं करेड, मव्वकाम०, दगमं करेड, मव्वकाम०, दुवालसमं करेड,
मव्वकाम०, चोदसम क०, मव्वकाम०, मोलसम करेड, सव्वकाम०, चउत्थं क०, सव्वकाम०, छड्डी लया ॥६॥

अर्थ—पण्डभक्त, अष्टमभक्त, दगमभक्त, पौण्डमभक्त, चतुर्थमभक्त और चतुर्थभक्त किया इन सब के

बीच में सर्वकाणगुणित पारणा किया, यह छठी लता है ॥६॥

मूल—दुनालसमं करेइ, सव्वकाम०, चौदिसमं करेइ, करित्ता सव्वकाम०. सोलसमं करेइ, सव्वकाम०, चउत्तरां करेइ, सव्वकाम०, छडं करेइ, २ सव्वकाम०, अड्डमं करेइ, सव्वकाम०, दसमं करेइ, सव्वकाम०, सत्तमी लया '१७॥

अर्थ—द्वादशभक्त, चतुर्दशभक्त, षोडशभक्त, चतुर्थभक्त, षष्ठभक्त, अष्टमभक्त और दशमभक्त किया, इन सब उपवासों से बीच सर्वकामगुणित पारणा किया, यह सातवी लता है ॥७॥

मूल—एक्केक्काए कालो अड्डमासा पंच य दिवसा, चउगहं दो वासा, अड्ड मासा, बीसं दिवसा । सेसं वहेव जाव सिद्धा ॥८॥

अर्थ—इस तपस्या को एक-एक परिपाटी में आठ-आठ महीना, पाँच-पाँच दिन लगते हैं । चारों परिपाटियों में दो वर्ष, आठ महीना और बीस दिन लगते हैं । शेष सब पूर्ववत् ही जानना चाहिए ॥८॥

सातवां अध्ययन समाप्त



महासर्वतोभद्रप्रतिमा तप

सुत्रम्

॥ १ ॥

महा सर्वतोभद्रप्रतिमा

१	२	३	४	५	६	७
४	५	६	७	८	९	१०
७	८	९	१०	११	१२	१३
३	४	५	६	७	८	९
६	७	८	९	१०	११	१२
२	३	४	५	६	७	८
५	६	७	८	९	१०	११

तपोदिन १६६
पारणा दिन ४६

आठवां अध्यायन

मूल—रामकण्ठा वि, शवरं भद्रोत्तरपडिमं उवसंपज्जिताणं विहरइ, तंजहा—दुवालसमं करेइ, करिचा सव्वकाम० गुणियं पारेइ, पारेत्ता चोदममं करेइ, करिचा सव्वकाम० पारेइ, सोलसमं करेइ, करेत्ता सव्वकाम० पारेइ, पारेत्ता अट्टारसमं करेइ, करिचा सव्वकाम० पारेइ, पारेत्ता वीसइमं करेइ, करेत्ता सव्वकाम गुणियं पारेइ, पढमा लया ॥१॥

अर्थ—रामकृष्णा रानी का अधिकार भी इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेषता केवल यह है कि वह भद्रोत्तर प्रतिमा नामक तपश्चर्या अंगीकार करके विचरने लगी। वह इस प्रकार है—द्वादशभक्त (पाँच उपवास) करके सर्वकामगुणित (सब रसों के उपभोग की जिसमें छूट हो ऐसा) पारणा किया फिर चतुर्दशभक्त, सोलह भक्त अष्टादशभक्त और वीसभक्त किया। सब के बीच में सर्वकामगुणित पारणा किया। यह पहली लता हुई ॥१॥

मूल—सोलसमं करेइ, सव्वकाम० अट्टारसमं करेइ, सव्वकाम०, वीसइमं करेइ, सव्वकाम०, दुवालसमं करेइ, सव्वकाम०, चोदसमं करेइ, सव्वकाम० पारेइ। वीया लया ॥२॥

अर्थ—षोडशभक्त (सात उपवास), अष्टादशभक्त (आठ उपवास) विरातिभक्त (९ उपवास) द्वादशभक्त और चतुर्दशभक्त (छह उपवास) किये। इन सब के मध्य में सर्वकामगुणित पारणा किया। यह दूसरी लता हुई ॥२॥

मूल—वीसइमं करेइ, सव्वकाम०, दुवालसमं करेइ, सव्वकाम०, चोदसमं करेइ, सव्वकाम०, सोलसमं करेइ, सव्वकाम०, अट्टारसमं करेइ, सव्वकाम० तइया लया ॥३॥

सर्वतीभद्र प्र०

५	६	७	८	९
७	८	९	५	६
९	५	६	७	८
६	७	८	९	५
८	९	५	६	७
तपोदिन ३६२				
पारणादिन ४६				
सब ४४२ दिन				

नवम अध्यायन

मूल—एवं पिउसेणकण्हा वि, श्वरं मुत्तावलीतवोक्मं उवसंपज्जिताण विहरइ, तंजहा-चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छंडं करेइ, करेत्ता सव्वकाम०, चउत्थं करेइ०, सव्वकाम०, अट्टमं क०, सव्वकाम०, चउत्थं क०, सव्वकाम० दसमं व०, सव्वकाम०, चउत्थं क०, सव्व०, दुवालसमं क०, सव्वकाम०, चउत्थं करेइ, सव्वकाम०, चोइसमं करेइ, सव्वकाम०, चउत्थं करेइ, सव्वकाम०, सोलसमं करेइ, सव्व-

कामगु०, चउत्थं करेइ, मन्त्रकाम०, अट्टारसमं०, सव्वकाम०, चउत्थं करेइ, सव्वकाम०, वीसइमं करेइ, सव्व-
 काम०, चउत्थं०, मन्त्रकाम०, वावीसइम करेइ, सव्वकाम०, चउत्थं क०सव्व०, चउवीसइमं क०. सव्व०चउत्थं
 करेइ मन्त्र, अट्टीमइमं करेइ, मन्त्रकाम०, चउत्थं क., सव्वकाम०, अट्टीमइमं करेइ, सव्वकाम०, चउत्थं
 करेइ, मन्त्र, तीमइमं करेइ, सव्व. वत्तीसइमं क., सव्वकाम०, चउत्थं करेइ, सव्व० चोत्तीसइमं क. सव्व०
 चउत्थं क. मन्त्र० चोत्तीमइमं करेइ, सव्व० चउत्थं क., सव्व० वत्तीसइम क, सव्वकाम०, चउत्थं क.,
 मन्त्रकाम०, एवं तद्वेव ओमरेइ जाव चउत्थं करेइ, करेत्ता मन्त्रकामगुणियं पारेइ ॥१॥

अं—पितृभेन कृष्णा रानी ज्ञा भी वृत्तान्त इसी प्रकार का है । विशेषता यह है कि दीक्षा अंगीकार करने के
 पश्चात् उगले मुक्तामनी नामक तपस्वर्या अंगीकार की । वह इन प्रकार है—चतुर्थभक्त करके सर्वकामगुणित पारणा किया,
 फिर पठभक्त करके पारणा किया, चतुर्थभक्त करके पारणा किया, इनी प्रकार अष्टमभक्त, पारणा, चतुर्थभक्त, पारणा,
 नमनभक्त, पारणा, चतुर्थभक्त, पारणा, दादयभक्त, पारणा, चतुर्थभक्त, पारणा, चतुर्थभक्त, पारणा, चतुर्थभक्त, पारणा,
 पोटनभक्त, पारणा, चतुर्थभक्त, पारणा, अठारहभक्त, पारणा, चतुर्थभक्त, पारणा, वीसभक्त, पारणा, चतुर्थभक्त, पारणा,
 सत्सभक्त, पारणा, चतुर्थभक्त, पारणा, चौथीसभक्त, पारणा, चतुर्थभक्त, पारणा, अट्ठाईसभक्त,
 पारणा, चतुर्थभक्त, पारणा, तीसभक्त, पारणा, चतुर्थभक्त, पारणा, वत्तीसभक्त, पारणा, चतुर्थभक्त, पारणा, चोत्तीस-
 भक्त और पारणा किया, अर्थात् धीन-धीन में एक-एक उपवास करते हुए सोवस उपवास तक चढना और फिर चोत्तीस-
 भक्त अर्थात् सोवस उपवास करके पूर्वोक्त क्रम में उतरना, यावत् एक उपवास करके पारणा करना । सब जगह पारणा
 पारंगतगुणित ही नमजना । यह दुत्तामनी तप की प्रथम परिपाटी है ॥१॥

मूल-एकश्राण परिवाडीण कालो एववारस मासा पनरस य दिवसा, चउण्हं कालो विरिह वासा दस

य मासा । सेसं तहेव जाव सिद्धा ॥२॥

अर्थ—इस बत की भी चार परिपाटियाँ हैं । प्रथम में पारणा में सर्व रसों का उपयोग किया जाता है, दूसरी में विगय का त्याग होता है, तीसरी में निलोप आहार से पारणा किया जाता है और चौथी परिपाटी में आयुर्विल से पारणा किया जाता है । एक-परिपाटी में ग्यारह मास और पन्द्रह दिन लगते हैं । चारों में तीन वर्ष और दस मास लगते हैं । शेष वृत्तान्त पूर्ववत् समझना यावत् सिद्ध हुई ॥२॥

१३	१	१४	१	१५	१	१६	१	१७	१	१८	१	१९	१	२०	१	२१	१	२२	१	२३	१	२४	१	२५	१	२६	१	२७	१	२८	१	२९	१	३०	१	३१	१	३२	१	३३	१	३४	१	३५	१	३६	१	३७	१	३८	१	३९	१	४०	१	४१	१	४२	१	४३	१	४४	१	४५	१	४६	१	४७	१	४८	१	४९	१	५०	१	५१	१	५२	१	५३	१	५४	१	५५	१	५६	१	५७	१	५८	१	५९	१	६०	१	६१	१	६२	१	६३	१	६४	१	६५	१	६६	१	६७	१	६८	१	६९	१	७०	१	७१	१	७२	१	७३	१	७४	१	७५	१	७६	१	७७	१	७८	१	७९	१	८०	१	८१	१	८२	१	८३	१	८४	१	८५	१	८६	१	८७	१	८८	१	८९	१	९०	१	९१	१	९२	१	९३	१	९४	१	९५	१	९६	१	९७	१	९८	१	९९	१	१००	१
----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	----	---	-----	---

इसको एक परिपाटी के दशदिन ३००, पारणादिन ६०, सब एक वर्ष चार परिपाटियों में चार वर्षं जगते हैं ।

मूल—एवं महासेणकएहा वि, एवरं—आर्यबिल वड्डुमाथं तत्रोक्रमं उवसंपञ्जिताणं विहरइ, तंजहा—
 आर्यबिलयं करेइ, करित्ता चउत्थं करेइ, बे आर्यबिलाइं करेइ, करित्ता चउत्थं करेइ, तिरिण आर्यबिलाइं करेइ,
 करित्ता चउत्थं करेइ, करेत्ता चत्तारि आर्यबिलाइं करेइ, करित्ता चउत्थं करेइ, करेत्ता पंच आर्यबिलाइं करेइ,
 करित्ता चउत्थं करेइ करेत्ता छ आर्यबिलाइं करेइ, करित्ता चउत्थं करेइ करेत्ता सत्त आर्यबिलाइं करेइ, करित्ता
 चउत्थं करेइ, एकोत्तरियाए वड्डुए आर्यबिलाइं वड्डुंति, चउत्थंतरियाइं जाव आर्यबिलसय करेइ, करेत्ता
 चउत्थं करेइ ।१॥

अर्थ—महासेनकृष्णा का वृत्तान्त भी ऐसा ही है । विशेषता केवल यही है कि-महासेनकृष्णा रानी ने दीक्षा
 धारण करने के पश्चात् आयबिल वर्द्धमान तपश्चर्या की आराधना की । उसकी विधि इस प्रकार है-एक आर्यबिल करके
 उपवास किया, दो आयबिल करके एक उपवास किया, तीन आयबिल करके एक उपवास किया, चार आयबिल करके एक
 उपवास किया, पाँच आयबिल करके एक उपवास किया, छह आयबिल करके एक उपवास किया, सात आयबिल करके
 एक उपवास किया, इस प्रकार एक एक आयबिल की वृद्धि करती और बीच-बीच में एक-एक उपवास करती हुई सौ
 आयबिल तक पहुँची । सौ आयबिल करके एक उपवास किया ।।१।।

मूल—तए ण सा महासेणकएहा अज्जा आर्यबिलवड्डुमाण तवोकम्मं चउदसवासेहिं तिहि य
 मासेहिं वीसइ अहोरत्ते हिं अहासुत्तं जाव सम्मं काएणं फासेइ जाव आराहेइ । आराहित्ता जेणेव अज्जचंदणा

पञ्जा तेणं च उपागच्छइ, उवाणच्छिता अज्जचंदणं अज्जं चंदइ- नमंसइ, धंदिचा नमंसिता च्हहि चउत्थेहि
 त्ताय अस्सणं भवेमाणी विहरइ ॥२॥

अर्थ—उन महाभैरवों ने आयबिल बद्धमान तप चौदह वर्षों, तीन महीनों और बीस दिनों में, सूत्र के
 प्रनुसार मन्त्र प्रहार में आराधन लिया । आराधन करने के बाद जहाँ चन्दनवाना आयिका थी, वहाँ गई । जाकर बन्दन-
 नमस्कार करके ब्रह्म-ने उवाचन बना तेना बादि तप करती हुई आत्मा तो भावित करती हुई विचरने लगी ॥२॥

मूल—तए णं सा महासैगकण्हा अज्जा तेणं उरानेणं जाव उवसोभेमाणी चिहुइ । ३॥

अर्थ—तदवस्था में महामैत्रिका आर्या उन उदार-प्रधान तप के कारण यावत् अतीव शोभती हुई विचरने लगी । ३।

मूल—तए णं तं नी महासैगकण्हाए अण्णया कयाइं पुव्वरचावरचकालसमयंसि चित्ता जहा मंघ-
 यग्य त्ताव अज्जचंदणं अज्जं पापुच्छइ, आपुच्छिता त्ताव संलेहणा त्ताव कालं अणवकंसुमाणी विहरइ ॥४॥

अर्थ—इतन्तर महामैत्रिका आर्या तो क्ली समय आधी रात्रि व्यतीत हो जाने के पश्चात् एकचक्र मुनि के
 मनार विचार उत्पन्न हुआ । यावत् उन्होंने आर्य चन्दना से पूछ कर यावत् मैत्रेयना अंगीकार करके यावत् ज्ञान को याचा
 न करती हुई निरन्तर लगी ॥४॥

मूल—तए णं ना महासैगकण्हा अज्जा, अज्जचंदणए अज्जाए अंतिए सामाहयमाइयाइं एक्का-
 न्ण मंणारं पच्छिन्ना वट्ठपडिपुरणाइं सत्तस वासाइं परियायं पाउत्थिचा मासियाए संलेहणाए त्तावाणं

शुसिचा सङ्गिभचाहं अणसथाए छेदिशा नसडाए कीरह जाव तमडं आराहेह, चरमेहि ऊसासनीसासेहि सिद्धा बुद्धा ॥५॥

अर्थ—अन्त में, महासेनकृष्णा ने आर्यचन्दना आर्यिका से सामायिक से लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन करके, पूरे सत्तरह वर्ष तक संयम का पालन करके, एक मास की संलेखना का सेवन करके, साठ भक्त अनशन से छेद कर, जिस प्रयोजन के लिए प्रज्ञया अगीकार की थी, उसे पूर्ण किया और अन्तिम स्वासोच्छ्वास के बाद सिद्ध-बुद्ध हुई यावत् सर्व दुष्टों का अन्त किया ॥५॥

मूल—अट्ट य वासा आदी, एकोत्तरियाए जाव सत्तरस ।
 एसो खलु परियाओ, सेणिय भज्जाण शायन्वो ॥१॥

अर्थ—पहली काली नामक आर्या ने आठ वर्ष तक संयम का पालन किया, दूसरी सुकाली आर्या ने नौ वर्ष, तीसरी ने दस वर्ष, इस प्रकार एक-एक वर्ष बढ़ाते-बढ़ाते दशवी ने सत्तरह वर्ष संयम का पालन किया । यह श्रेणिक राजा की रानियों के संयम का काल जानना चाहिए ॥१॥

दशवां अध्ययन समाप्त



उपसंहार

सूत्रम्

मूल—एवं बलु वंदु ! समयेणं भगवया महावीरेणं आङ्गरेणं जात्र संपत्तेणं अद्दुमस्स अंगस्स अंत-
गडदसाणं अयमंडे पणणेत्ते ।

अन्तगडदसाणं अंगस्स एगो सुयक्खंधो, अद्दु वग्गा, अद्दुसु चैव दिवसेसु उदिसिज्जंति । तत्थ
पहम—विइयवग्गा दम—दस उदे सगा, तइयवग्गे तेरम उदे सगा, चउत्थ-पंचमवग्गा दस-दस उदे सगा, छद्द-
उग्गे मोलम उदे सगा, सत्तमवग्गे तेरम उदे सगा, अद्दुमवग्गे दम उदे सगा ।

इति अंतगडदसासुत्तं समत्तं

वार्थ—योगुत्तमां न्याभी बोत्ते-हे जम्मू ! थमण भगवान् महावीर, धर्मतीयं की आदि करने वाले यावत् मुक्तिप्राप्त
ने आठवें जंग अन्तगडदसा का यह वर्ण कहा है ।

अन्तगडदसा जंग का एक अंतस्तब्ध है, आठ वर्ण हैं, आठ दिनों में उनका उद्देश होता है ।

प्रथम और द्वितीय वर्ण में दम-दम उद्देशक हैं, तीसरे वर्ण में तेरह, चौथे-पांचवें वर्ण में दस-दस, छठे वर्ण में
मोमद, सातवें में तेरह और आठवें वर्ण में दम उद्देशक हैं ।

अन्तगडदशासुत्र समाप्त



